शान्ति-सन्देश

ISSN 2454-2369

वर्ष ७३] महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-८१२००३ (बिहार) [अंक २

[वैशाख-ज्येष्ठ; वि०सं० २०८२; मई, २०२५ ई०]

सूक्ति-कण

❖ **शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥**

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके॥

❖ **तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः। उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥**

उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अंतःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।

❖ **समं कायाशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥**

काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ।

❖ **प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त असीत मत्परः ॥१४॥**

ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित, भय-रहित तथा भलीभाँति शान्त अंतःकरणवाला सावधान योगी मन को रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे।

❖ **युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥**

वश में किये हुए मनवला योगी इस प्रकार आत्मा को निरंतर मुझ परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुझमें रहनेवाली परमानंद की पराकाष्ठारूप शान्ति को प्राप्त होता है।

❖ **नात्यश्नतस्तु योगीऽस्ति चैकान्तमनश्नतः। न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥**

हे अर्जुन! यह योग न तो बहुत खानेवाला का, न बिल्कुल न खानेवाला का, न बहुत शयन करने के स्वभाववाले का और न सदा जागनेवाला का ही सिद्ध होता है।

❖ **युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥**

दुखों का नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालों का ही सिद्ध होता है।

❖ **यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्। ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥**

यह स्थिर न रहनेवाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसार में विचरता है, उस-उस विषय से रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मा में निरुद्ध करे।

❖ **प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्। उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥**

क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शांत है, जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शांत हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानंदघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम आनंद प्राप्त होता है। (श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ६)

अन्याय सहनेवाले से ज्यादा दुःखी अन्याय करनेवाला होता है।—प्लेटो

सन्तवाणी

परम भक्तिन सहजोबाई की वाणी

राम तजूँ पै गुरु न विसारूँ। गुरु के सम हरि कूँ न निहारूँ ।।
हरि ने जन्म दियो जग माहीँ। गुरु ने आवागमन छुटाहीँ ।।
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा ।।
हरि ने कुटुँब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता बेरी ।।
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ ।।
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतम रूप लखायौ ।।
हरि ने मो सूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दे ताहि दिखायौ ।।
फिर हरि बंधमुक्ति गति लाये। गुरु ने सबही भर्म मिटाये ।।
चरणदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ ।।

भावार्थ–राम (परमात्मा) को मैं छोड़ सकती हूँ; परंतु गुरु को कभी नहीं भूल सकती। गुरु के समान हरि (परमात्मा) को मैं नहीं मानती। (इसका कारण यह है कि) परमात्मा ने मुझे दुःखमय संसार में जन्म दिया; परंतु गुरु ने मेरा आवागमन (संसार में जन्म लेना और मरना) छुड़ा दिया। परमात्मा ने मेरे साथ पाँच चोर (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) लगा दिये और गुरु ने मुझ अनाथ को उन पाँचो चोरों से छुड़ा लिया। परमात्मा ने मुझे परिवार के बंधन में डाल दिया और गुरु ने मेरी परिवार की ममता (आसक्ति)-रूपी बेड़ी को काट दिया। परमात्मा ने मुझे शारीरिक-मानसिक रोगों के भोगों में फँसा दिया, जबकि गुरु ने योग का अभ्यासी बनाकर (योग पर आरूढ़ करके) उन सब रोग-भोगों से मुझे छुड़ा लिया। परमात्मा ने मुझे संसार के विविध कर्मों और भ्रम (अज्ञानता, माया) में डाल दिया या भटका दिया; परंतु गुरुजी ने मुझे अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करा दिया। परमात्मा ने मुझसे अपने आपको छिपा लिया था; परंतु गुरु ने अपने ज्ञानरूपी दीपक से उसको दिखा दिया। फिर परमात्मा ने बंध और मोक्ष की स्थितियाँ बनायीं, दूसरी ओर मेरे गुरु ने मेरे लिए बंध-मोक्ष-जैसे सब भ्रम (भ्रान्ति, धोखा) मिटा दिये। भक्तिन सहजोबाई कहती हैं कि मैं अपने गुरुदेव श्रीचरणदासजी पर तन-मन निछावर करती हूँ; मैं परमात्मा को छोड़ सकती हूँ; परंतु गुरु को कभी नहीं छोड़ सकती। **व्याख्याकार–स्वामी छोटेलाल दास**

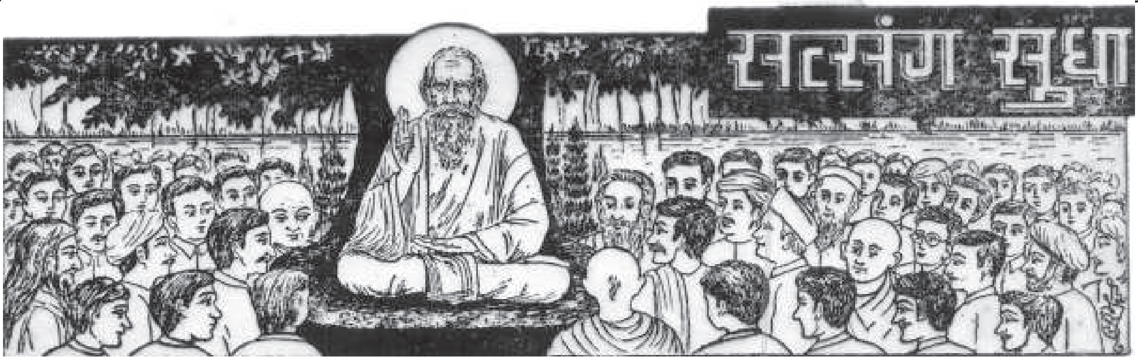

परमाराध्य सन्त सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

प्रातःस्मरणीय अनन्त श्रीविभूषित परमाराध्य संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन दिनांक २४.१२१९५० ई० को पूर्णियाँ जिला विशेषाधिवेशन, मोकमा ग्राम में अपराह्नकालीन सत्संग के सुअवसर पर हुआ था। **श्रुतलेखक : महर्षि संतसेवी परमहंस**

बन्दउँ गुरु पद-कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर।।

प्यारे धर्मानुरागी भाइयो !

हमलोग संतमत का सत्संग करते हैं। यह सत्संग हमलोगों को ईश्वर की भक्ति सिखलाता है। ईश्वर की भक्ति से सब दुःख दूर हो जाएँगे। इसी आशा को लेकर हमलोग सत्संग करते हैं। साथ ही अगर सत्संग के ख्याल के मुताबिक रहेंगे, तो शांतिपूर्वक रहेंगे। शांतिपूर्वक रहने का नमूना ठीक-ठीक प्रत्यक्ष उनलोगों को होता है, जो मन बनाकर सत्संग के अनुकूल रहते हैं। इसी जन्म में मोक्ष प्राप्त कर लें और अगर मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकें, तो फिर दूसरे जन्म में काम को खतम करें; इसीलिए सत्संग है। इहलोक-परलोक दोनों को सुधारने के लिए हम सत्संग करते हैं तथा लोगों को भी करने के लिए कहते हैं। इसी ईश्वर-भक्ति के संबंध में थोड़ा-सा कहूँगा, जैसी मेरी शिक्षा है, जैसा मैं जानता हूँ। पहली बात यह है कि ईश्वर-स्वरूप को जानें कि वह कैसा है? प्राप्तव्य वस्तु की जानकारी होनी चाहिए। जो आप इन्द्रिय से जान सकें, वह परमात्मा नहीं। तुलसीकृत रामायण में ईश्वर-स्वरूप जानने के लिए लक्ष्मण से रामजी कहते हैं–

गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानहु भाई।।

इन्द्रियों को जो प्रत्यक्ष हो और जहाँ तक मन जाय, सब माया है। ईश्वर-स्वरूप इससे बहुत आगे है। इन्द्रियगम्य जो कुछ भी है, वह मायिक पदार्थ है। ईश्वर आत्मगम्य है। जिसे केवल आत्मा से ही पहचान सकते हैं, वह ईश्वर है। जो इन्द्रियों से जानते हैं, वह ईश्वर नहीं है। राम उपदेश करते हैं–

एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।

नर-तन का यह फल नहीं है कि विषयानुरागी बनो। स्वर्ग का विषय भी ओछा

है और अंत में दुःख देता है। विषय उसे कहते हैं, जिसे इन्द्रियों से जानते हैं; इसके पाँच प्रकार हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। स्पर्श त्वचा से, शब्द कान से, रस जिभ्या से, गंध नाक से और रूप नेत्र से; इनके अतिरिक्त संसार में कुछ जानने में नहीं आता। कोई भी पदार्थ हो—कठिन (ठोस), तरल, वाष्पीय; लेकिन पंच विषयों में से कोई एक अवश्य है। पुराण में स्वर्ग के लिए जाना जाता है कि इन्द्रियों के विषय वहाँ भी भोगते हैं; चाहे कितने ऊँचे दर्जे का स्वर्ग क्यों न हो। राजा श्वेत ब्रह्मलोक गए। उन्होंने दान नहीं किया था, फलस्वरूप उनको ब्रह्मलोक में भूख-प्यास सताने लगी। तब उन्होंने ब्रह्माजी को कहा। ब्रह्माजी ने कहा—'यहाँ खाने का सामान है ही नहीं। आपने कभी दान नहीं किया, उसका ही फल है कि यहाँ आपको भूख-प्यास सता रही है। इसलिए आप अमुक सरोवर में जाएँ, वहाँ आपका मृत शरीर सुरक्षित है, उसी का भोजन करें।' राजा श्वेत ने पूछा—'महाराज! यह भोग मुझे कबतक भोगना पड़ेगा?' ब्रह्माजी ने कहा—'जब आपको अगस्त्य मुनि के दर्शन होंगे और उनका आशीर्वाद आपको मिलेगा, तो आप इस कष्ट से मुक्त हो जाएँगे।'

राजा श्वेत लाचारी नितप्रति उक्त सरोवर जाते और अपने मृत-शरीर का मांस खाकर भूख बुझाते। संयोगवश वहाँ अगस्त्य मुनि पहुँचे। उन्होंने देखा कि दिव्य शरीर है, लेकिन मृत-शरीर का मांस खा रहे हैं, तो उनसे पूछा—'आप कौन हैं?' राजा श्वेत ने अपना परिचय दिया और आशीर्वाद माँगा, तब वे उस भोग से मुक्त हुए।

ब्रह्मलोक जाकर भी भूख-प्यास सताती है। इसीलिए कहा—'स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।' वहाँ भी जबतक पुण्य है, तभी तक रहो, फिर मृत्युलोक आओ। इससे यह जाना गया कि जैसे विषय यहाँ हैं, वैसे ही वहाँ भी। यह विशेष बात है, इसी का विचार कीजिए, नित्यानित्य विचारिए। वहाँ पर क्या सुख? इन्द्रियगम्य पदार्थ का ग्रहण करना। जो इन्द्रियों के ज्ञान से ऊपर है, वह है ईश्वर-ज्ञान। चाहे भीतर की या बाहर की इन्द्रिय से जो आप जानते हैं, सो माया है। इन्द्रियों का संग छोड़कर जो आप जानें, वही परमात्मा—ईश्वर है। उसकी भक्ति करें, उसका भक्त बनें, उसको प्राप्त करें, फिर सुख की कमी क्या? यहाँ का सुख थोड़ा तथा अंग-अंग में दुःख है। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का सुख प्राप्त करने के लिए कमाई और परिश्रम कीजिए, कितना करना पड़ता है? कितना दुःख है! फिर भी एक ही दिन की कमाई से काम नहीं चलता है। संतोष नहीं होता। परमात्मा को जिन लोगों ने प्राप्त किया, उन्होंने कहा—यही सुख है। जबतक प्राप्त नहीं हो, परिश्रम करें। भक्ति करने के अभ्यास में आनंद मिलता है।

भजन में होत आनंद आनंद।
बरसत बिसद अमी के बादर, भींजत है कोइ संत॥
अगर बास जहँ तत की नदिया, मानो धारा गंग।
करि असनान मगन होइ बैठी, चढ़त शब्द कै रंग॥
रोम रोम जाके अमृत भीना, पारस परसत अंग।
शब्द गह्यो जिव संसय नाहीं, साहिब भयो तेरे संग॥
सोइ सार रच्यो मेरे साहिब, जहँ नहिं माया अहं।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, जपो सोहं सोहं॥

अगर=चन्दन। शब्द का रंग चढ़े तो

क्या होगा? साहिब भये तेरे संग। संग में हई है, जबसे हम नहीं जानते, तबसे ही; किंतु शब्द को पकड़ लेने से प्रत्यक्ष हो जाएगा। बिना शब्द गहे प्रत्यक्षता हो जाएगी? नहीं होगी। ध्यानविन्दूपनिषद् में है–

बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्॥

अक्षर का बीज विन्दु है। पेन्सिल या कलम रखो, पहले विन्दु ही बनता है। लकीर बनाते हैं, वह विन्दुमय है। आपलोगों ने जो ध्यानविन्दूपनिषद् के पाठ में सुना, वही परम विन्दु है। यहाँ आपलोगों ने सुना– 'विन्दु-ध्यान-विधि, नाद-ध्यान-विधि, सरल-सरल जग में परचारी।' विन्दु इतना छोटा होता है कि उसका विभाग नहीं हो सकता। बहुत छोटा है, इसीलिए इसे विन्दु नहीं कहकर परम विन्दु कहा। संसार में लोग चिह्न करके विन्दु मानते हैं; लेकिन उसकी परिभाषा के अनुकूल बाहर में विन्दु नहीं बना सकते। इस परम विन्दु को प्राप्त करने से शब्द मिलता है। फिर शब्द का भी जहाँ लय हो जाता है, वह 'निःशब्दं परमं पदम्' है। अंतः साधना करते-करते आनंद आने लगेगा। मलयगिरि का सुगंध मालूम होगा तथा शब्द का रंग चढ़ जाएगा। तब हो जाएगा- 'साहिब भयो तेरे संग।' कोई कहे–शब्दातीत परम पद है और यहाँ शब्द को ही परम पद बना दिया, ऐसा क्यों? इसके उत्तर में कहा जा सकता है, गुरु नानकदेव ने कहा है– 'ना तिसु रूप बरनु नहिं रेखिआ, साचे शबदि नीसाणु।' शब्द ही सही चिह्न है। देवता को प्रसन्न करने के लिए देवताओं की प्रतिमा पूजते हैं; उसी प्रकार यह शब्द भी परमात्मा है। प्रतिमा पूजते हैं तथा उसे ठाकुरजी कहते हैं। उसी प्रकार यह शब्द भी परमात्मा है। शब्द अपने उद्‌गम स्थान पर पहुँचाता है। घोर अँधेरी रात में जहाँ से शब्द आता है, वहाँ चलते-चलते पहुँच जाय, असम्भव नहीं। जो कोई विन्दु को ग्रहण करेगा, वह शब्द को ग्रहण कर लेगा। जहाँ से इस शब्द का विकास हुआ है, वहाँ पहुँचा देगा। इसलिए मन-बुद्धि आदि इन्द्रियों से आगे बढ़कर शब्द को पकड़ने की कोशिश करें। आँख, कान; सब मोटी-मोटी इन्द्रियाँ हैं। इसमें सूक्ष्म रूप से जो चेतनवृत्ति है, उसके अंदर रहने के कारण सूक्ष्म इन्द्रियाँ हैं। यह वृत्ति आँख में आई, तो देखने की शक्ति दृष्टि हुई। जो स्थूल में लिपटकर रहेगा, तो सूक्ष्म में क्या उठ सकता है? इन सब पदार्थों को लें, तो वह विन्दुमय है। परमात्मा की कृपा, गुरु की दया हो, विन्दु पर अपने को रख सकें, तो पूर्ण सिमटाव होगा। सिमटाव का फल ऊर्ध्वगति होगी। कठिन या तरल किसी पदार्थ को समेटिए, ऊर्ध्वगति होगी। जहाँ मन का समेट है, स्थूल में सिमटने पर सूक्ष्म में प्रवेश होगा। इसके शौकीन को बाबा नानक की बात याद रहे–

सूचै भाड़ै साचु समावै बिरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी॥

पवित्र बर्तन में सत्य अँटता है। हमारा अंतःकरण शुद्ध होना चाहिए। इसके लिए संयम तथा परहेज करें। अपने को काम-क्रोध से बचा कर रखें। बाहर में पाप कर्म नहीं करें। जिस कर्म को करने से अधोगति हो, उसे पाप कहते हैं। पाप–झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार नहीं करें, तब ईश्वर की ओर जाएँगे। इसपर संशय उठेगा कि क्या यहाँ ईश्वर नहीं है? इसका

दोषी को मृत्युतुल्य कष्ट भोगना पड़ता है।–वेदव्यास

उत्तर गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

अग जग मय सब रहित बिरागी।

यहाँ हम नहीं पहचानते हैं, इसलिए हम जहाँ जाकर पहचानेंगे, वहाँ जाएँगे। प्रत्यक्ष वहाँ पाएँगे, जहाँ जाएँगे। उसको प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना तथा परहेज करना; इतनी बातों को जानें। इससे विशेष जानें तो और अच्छा। यह बहुत दृढ़ है कि कोई बिना संयम किए प्राप्त करना चाहे तो 'भूमि पड़ा चह छुवन आकाशा' वाली बात है। संयमी होने पर संसार में भी सुखी रहता है। वह फजूल खर्च नहीं करता है। उसके पास धन भी जमा हो जाता है। संयमी आदमी बहुत रोग में नहीं पड़ते। धन एकत्रित होने के कारण और पापविहीन होने के कारण लोगों की नजर में वे श्रेष्ठ देखने में आते हैं तथा अंत में परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। पुरुष को स्त्री का और स्त्री को पुरुष का संग करना पड़ता है। इसके लिए वैवाहिक विधान है। विवाह करने से व्यभिचार नहीं होगा। शास्त्र के नियम छोड़कर अथवा विवाह नहीं होने पर जो संग है, वह व्यभिचार है।

तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, खैनी-नशा है। दाँत खराब, थू-थू करने की आदत, ऐसी चीज क्यों खाते हो? बच्चे थे, तब इसकी आदत नहीं थी, बड़े होकर लगाया तो आदत लग गई। अब रास्ते चलते नशा करते हैं। तम्बाकू संसार में क्यों हुआ? औषधि के लिए हुआ। तम्बाकू की गद्दी में साँप ठहर नहीं सकता। साँप के मुँह में खैनी देने से वह मर जाता है। चावल को धोकर खाते हैं, किंतु खैनी को क्या करते हैं? यह अपवित्र तथा नशा भी है। हमारे सत्संग में यह कहा जाता है कि ताड़ी को कौन कहे, तम्बाकू तक मत लो।

'भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ और सराब।
कह कबीर इनको तजै, तब पावै दीदार ॥'

'मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय॥
विद्या मद और गुनहु मद, राज मद्द उनमद्द।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद ॥'

—संत कबीर साहब

छुतिया=छू जानेवाली चीज। लोग कहते हैं—बिना हिंसा किये कैसे रह सकते हैं? एक हिंसा वार्य तथा दूसरा अनिवार्य होता है। वार्य से बच सकते हैं; किंतु अनिवार्य से नहीं बच सकते हैं। शरीर खुजलाने पर भी शरीर के कीड़े मरते हैं। जल पीने, हवा लेने में भी हिंसा है। इसको रोकने की कोई विधि नहीं है। यह अनिवार्य हिंसा है। खेती करने, घर बुहारने, आग जलाने आदि में भी हिंसा है; किंतु अनिवार्य है। इसका प्रायश्चित—अतिथि-सत्कार और परोपकार से करो। राजा के लिए युद्ध अनिवार्य है। गृहस्थ के लिए घर बनाना, खेती करना अनिवार्य हिंसा है। जान-बुझकर स्वार्थ के लिए जो हिंसा होती है, वह वार्य हिंसा होती है, इसे त्यागना चाहिए। मांस-मछली भी छोड़ो, खाओ मत। मनुस्मृति में आठ आदमी को पाप लिखा है। भूपेन्द्रनाथ सान्याल ने कहा है—

अष्ट कुलाचल सप्त समुद्रा ब्रह्म पुरन्दर दिनकर रूद्रा।
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः॥

हमारी देह में जो परमाणु है, जलचर, नभचर आदि में जो परमाणु है एक नहीं। हमलोगों के शरीर में मानविक परमाणु है

तथा उनमें पाशविक परमाणु है। मनुष्य-शरीर में पशु-शरीर का परमाणु रखना उचित नहीं। मानसिक हिंसा भी छोड़ो। ईश्वर पर विश्वास करो, उसकी प्राप्ति अपने अंदर में होगी। तब 'बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआन बताई।' ऐसा ध्यानाभ्यास से होगा।

सबकी दृष्टि पड़े अविनाशी बिरला संत पिछानै।
कहै कबीर यह भ्रम किबारी जो खोले सो जानै॥

सत्संग करो। ध्यानाभ्यास करो–यह अंतर का सत्संग है और गुरु की सेवा करो।

तेल तुल पावक पुट भरि धरि, बनै न दिया प्रकाशत।
कहत बनाय दीप की बातें, कैसे हो तम नाशत॥
–संत सूरदास

साधना करते-करते करने की शक्ति प्राप्त होगी, तब मालूम होगा कि पहले से कुछ बदल गए। अन्यथा, हनोज रोज अब्बल–अब भी पहला ही दिन है। बाबा साहब से एक सत्संगी ने कहा था–जिसका नाम रंगलाल था। पानी बहुत दूर में है। मानो हजार हाथ नीचे है। हजार हाथ की रस्सी लगेगी, पानी खींचने के लिए बाल्टी भी चाहिए। रस्सी कुएँ में गिराकर केवल छोर पकड़े रहते हैं, फिर पानी निकालकर पीते हैं। अगर छोर छूट जाय, तो पानी नहीं पी सकते हैं। उसी प्रकार भजन तथा आशा की छोर पकड़े रहो, कल्याण होगा। आशा कभी मत छोड़ो। 'आशा से मत डोल रे तोको पीव मिलेंगे।'❐

विराट् रूप भी अनन्त नहीं

अगर कोई तर्क करता है कि ईश्वर नहीं है, तो मैं प्रश्न करता हूँ कि एक अनादि-अनंत तत्त्व को मानते हो या नहीं? यदि नहीं मानोगे, तो सभी को सादि-सान्त कहना पड़ेगा, तो प्रश्न होगा कि उन सादि-सान्तों के परे क्या है? इसके उत्तर में जबतक अनंत नहीं कहा जाए, तबतक इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं हो सकता। सान्तों का बड़े-से-बड़ा मंडल बना लो, फिर भी उसका मण्डल सान्त ही होगा। सूर्य-चन्द्र, सारा ब्रह्माण्ड सान्त-ही-सान्त है। अनेक ब्रह्माण्ड भी अनंत नहीं होते। विराट् रूप भी अनंत नहीं है। सीताजी की खोज के लिए जब बड़े-बड़े वानर चले और समुद्र के किनारे पहुँचते हैं, भूख-प्यास से विकल होते हैं, उस समय एक विवर से एक पक्षी को निकलते और फिर उसमें प्रवेश करते देखा। ऐसा देखकर सभी बन्दरों ने एक दूसरे का हाथ पकड़कर उस गुहा में प्रवेश किया। वहाँ एक तपस्विनी तेजयुक्त माई को देखा। उस तपस्विनी ने उन बन्दरों को फल खाने और जल पीने का आदेश दिया, फिर आँखें बंद करने के लिए माई ने कहा। आँखें बंद करने के बाद आँखें खोलने पर फिर सब अपने को समुद्र के किनारे पाया। अब उस समुद्र को कौन पार करे? जाम्बवन्त ने कहा–'जिस समय मैं जवान था, विराट् रूप भगवान की मैंने दो घड़ियों में सात प्रदक्षिणाएँ की थीं; लेकिन अब तो मैं बूढ़ा हो गया हूँ।' इससे जाना जाता है कि वह विराट् रूप भी अनंत नहीं था।

कुरुक्षेत्र के मैदान में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो विराट् रूप दिखाया था, वह भी अनंत नहीं था; क्योंकि उस विराट् रूप के अतिरिक्त स्थान बचा था, जिसमें कौरव-पाण्डव दल के लोग भगवान् के मुँह में प्रवेश करते थे और मर-मरकर गिरते थे। अर्जुन भी एक जगह खड़ा होकर डर रहा था। अनादि-अनंत तत्त्व ही असीम होगा, सारे सांतों के पार में एक अनंत को नहीं मानने से नहीं बनता।

(महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज)

धन के द्वारा अमरत्व प्राप्ति असंभव है।–स्वामी शिवानंद

पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंस

प्रवचन-पीयूष

पूज्यपाद महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज का यह प्रवचन बिहार राज्यान्तर्गत भागलपुर नगर के परम पावन सुरसरि तट पर अवस्थित महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट में दिनांक २४-०७-१९९४ ई० को साप्ताहिक सत्संग में हुआ था। : सम्पादक

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार। मंगलमय मंगलकरण, विनवौं बारम्बार॥
धन्य धन्य सद्गुरु सुखद, महिमा कही न जाय। जो कुछ कहूँ तुम्हरी कृपा, मोतें कछु न बसाय॥

समवेत समादरणीय सज्जनवृन्द माताओ एवं भक्तिमती बहनो!

सन्तों का ज्ञान महान् है। जो उसका आचरण करते हैं, उनका कल्याण होता है। सन्तों का ज्ञान केवल मौखिक या बौद्धिक नहीं, उनका अनुभव ज्ञान होता है। अपने को तपाकर, बहुत प्रकार के कष्टों को सहकर, साधना की पराकाष्ठा पर पहुँचकर उन्होंने जो उपलब्ध किया, वही अपने अनुभव की बात संसार के सामने रखी है। सन्त कोई वेश-विशेष के कारण नहीं होते। सन्तों की पहचान भी बहुत कठिन होती है। संत तुलसी साहब कहते हैं–

"जो कोई कहै साधु को चीन्हा।
तुलसी हाथ कान पर दीन्हा॥"

जिस समय सन्त लोग होते हैं, उस समय उनकी पहचान कोई बिरले ही कर पाते हैं। अधिक तो उनके विरोधी ही होते हैं। उनकी निन्दा, उनकी शिकायत सामान्य लोगों के लिये एक मामूली-सी बात होती है। वे निन्दा-शिकायत ही नहीं करते, उनकी जान लेने तक को उतारू होते हैं। इतना ही नहीं, कितने संतों महात्माओं के प्राण लेने से भी वे बाज नहीं आये। सत्य तो यह है कि संतों ने हँसते-हँसते अपने प्राण दिये; किन्तु विश्व-कल्याण के लिये आत्मज्ञान देना उन्होंने नहीं छोड़ा। सन्तों ने अपने प्राण-प्रयाण की परवाह नहीं करके सत्य ज्ञान का प्रचार करते हुए अपनी कुर्बानी की; किन्तु कभी धर्म को नहीं छोड़ा। प्रभु ईसा मसीह जिस समय हुए थे, बहुत कम लोगों का विश्वास उनपर था; बल्कि प्रभु ईसा मसीह के शिष्य ने ही उनको पकड़वाया और क्रॉस पर लटकवाया। दूसरे की तो बात जाने दीजिये, शिष्य का गुरु के साथ यह कैसा व्यवहार है! महान आश्चर्य है! कि उन सन्त का हृदय कितना महान था। उनका आत्मबल कितना बढ़ा-चढ़ा था, उनका हृदय कितना विशाल था! क्रॉस पर लटकते हुए उन्होंने कहा था–"हे प्रभु! जो मेरे साथ इस तरह का व्यवहार कर रहे हैं, उनको क्षमा करना; क्योंकि वे नहीं जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं। वे अज्ञानी हैं।" आज उसी प्रभु ईसा मसीह के नाम पर ईसाई धर्म फैला हुआ है और विश्व में ईसाइयों की संख्या ही संभवतः सभी धर्मों के लोगों से अधिक है। उस समय उनको किसने पहचाना? अगर वे अधिक दिनों तक रहे होते, तो उनसे जो हम लाभ लिये होते, उनके अभाव में क्या ले सकते हैं? आज क्या मिल सकता है? केवल उनकी वाणी मिल सकती है। क्या वाणी से ही हम तत्त्वज्ञान की समझ सकते हैं। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन–इन दो वाष्पों को मिलाने से पानी बनता है। किताब में लिखा हुआ है कि ऑक्सीजन की इतनी मात्रा लीजिये और हाइड्रोजन की इतनी मात्रा लीजिये; मिलाइये, पानी हो जायेगा। पुस्तक में सारी बातें लिखी हुई हैं; किन्तु अरे भाई! ऑक्सीजन किसको कहते हैं और हाइड्रोजन किसे कहते हैं। उनकी पहचान करानेवाला कोई व्यक्ति विशेष तो होना

धन से धन की भूख बढ़ती है, तृप्ति नहीं होती।–प्रेमचंद

चाहिये ही। प्रयोगशाला में जाना पड़ेगा। जिसने इन दोनों गैसों को मिलाकर पानी बनाकर देख लिया है, वह आपको पानी बनाकर दिखलायेगा। नहीं तो दूसरी चीज से दूसरी चीज मिलकर तीसरी चीज बन जायेगी और वह खतरनाक सिद्ध होगी। केवल किताबी ज्ञान से नहीं होता है। जो ज्ञानी अपने जीवन-काल में रहते हैं, उनका जो ज्ञान होता है, वह उनके अनुभव का ज्ञान होता है।

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब थे। इनके साथ भी लोगों ने दुर्व्यवहार किया था। और की तो जाने दीजिये, इनके ही दो चाचा थे। उन चाचाओं ने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया नहीं। एक चाचा ने तो कोई बाधा नहीं दी; लेकिन दूसरे ने बड़ी बाधा उत्पन्न कर दी थी। अपने जीवन-काल में इनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आज हजरत मुहम्मद साहब के नाम पर देखिये, इस्लाम धर्म फैला हुआ है। जिस समय वे थे, उस समय किसी ने उनको पहचाना?

स्वामी दयानन्द जी जिस समय थे, उनके सेवक ने ही उनके साथ धोखेबाजी करके उनकी जान ले ली। दूध पिलाने के बहाने संसार से रवाना कर दिया। सज्जनो! विचारणीय विषय है। जो साथ में रहता है, वह भी संत को नहीं पहचान सकता। उसको दृष्टि नहीं है, आँखें नहीं हैं, सूझेगा क्या? कितना भी सूर्य का प्रकाश क्यों न हो, उल्लू को कभी सूझता है दिन में? एक सूर्य के बदले हजार सूर्य उग जायें; लेकिन उल्लू को कभी आँख होने को नहीं, सूझने को नहीं। उसी तरह जो सन्त हैं, ज्ञानी हैं, उनको अज्ञानी जन क्या जाने!

भगवान् बुद्ध के मौसेरे भाई थे देवदत्त, जो भगवान् के शिष्य भी थे। भगवान् बुद्ध के साथ कितना दुर्व्यवहार और अत्याचार किया, क्या कहा जाय! भगवान् को अन्य विरोधियों ने भी कम नहीं सताया। एक कुलटा नारी को बहकाकर भगवान् बुद्ध के ऊपर चरित्रहीनता का दोषारोपण कर दिया; किन्तु जो सत्य था, सबके सामने प्रत्यक्ष हो गया और भगवान् बुद्ध दोपहर के मार्तण्ड को भाँति उद्भासित हो उठे। भगवान् बुद्ध को मरवा डालने के लिये देवदत्त ने कम कुचेष्टा नहीं की; किन्तु सबमें वह विफल रहा। परमात्मा ने जिसको जितने दिनों का जीवन दिया है, उनके अन्दर उसको कौन मार सकता है।

जाको राखै साइयाँ, मार सके ना कोय।
बाल न बाँका करि सके, जो जग बैरी होय।।

मीराबाई भक्तिन हुईं। उनके परिवारवालों ने ही उनको कुलटा कहकर अपमानित किया। अपमानित ही नहीं किया, उन्होंने तो चाहा कि ऐसी कुलटा नारी मर ही जाय, तो अच्छा है। सोचा–जहर पिलवाकर मार दो इसको। जहर का प्याला दे दिया गया मीराबाई को पीने के लिये। मीराबाई भगवान् का चरणामृत कहकर उसको पान कर जाती है। विष का पान करनेवाली मीरा अमर हो जाती है, और जिसने विष का प्याला पिलवाया, वह मर-सड़-गलकर कहाँ चला गया, जिसका कोई ठिकाना नहीं। जबतक इस पृथ्वीतल पर अध्यात्मज्ञान का प्रकाश रहेगा, तबतक मीरा अमर रहेगी।

कबीर साहब की बहत्तर कसनी प्रसिद्ध है। बहत्तर तरहों से कबीर साहब को लोगों ने कष्ट दिया। खालसा इतिहास पढ़िये। नानक साहब के पंथ के गुरुओं के साथ क्या-क्या हुआ। कितने-कितने कष्ट झेलने पड़े है उन गुरुओं को; लेकिन फिर भी उन गुरुओं ने अपने धर्म को छोड़ा नहीं, अपना सिर देकर आत्मज्ञान का प्रचार और प्रसार किया। नौवें गुरु तेगबहादुर जी महाराज ने तो स्पष्ट कहा–

"धरम हेतु साका जिन कीया।
सीस दिया पर सार न दीया।।"

अयोध्या में हुए सन्त पलटूदास जी महाराज। दुष्टों ने उनको पकड़कर जलती हुई आग में फेंक दिया। संत को कौन पहचानता है? जिन्होंने पहचाना, उसका कल्याण हुआ। शम्स तबरेज ने अपनी खाल खिंचवाई और मंसूर ने अपने को शूली पर लटकवाया; लेकिन सत्य धर्म का त्याग नहीं किया।

एक गुरुभक्तिन थी सहजोबाई। उसका विवाह हो चुका था। उसकी ससुराल जाने की

धन से मनुष्य कभी तृप्त होनेवाला नहीं है।–कठोपनिषद्

तैयारी हो रही थी। कोई महिला उसको वस्त्रालंकार से सुसज्जित कर रही थी और कोई उसके बाल को सँवार रही थी। उसी समय संयोगवश उसके गुरु संत चरणदासजी महाराज का पदार्पण होता है। सहजोबाई की साज-सँवार को देखकर सन्त चरणदास जी महाराज के श्रीमुख से यह वाणी निःसृत होती है—

"चलना है रहना नहीं, चलना विस्वावीस।
सहजो तनिक सुहाग पे, कहा गुहावै सीस॥"

जैसे सूखी दियासलाई पर काठी घिसने से वह भक् करके जल उठती है, उसी तरह गुरुवाक्यरूपी काठी के घर्षण से सहजोबाई के पूर्वजन्म के शुभ संस्कार जग गये। वह सुसराल जाना छोड़कर गुरु के साथ-साथ चल देती है। गाँव-समाज में गुरु और शिष्य—दोनों की कड़ी आलोचना और काफी निन्दा हुई; किन्तु आगे चलकर जैसे बादल से निकलकर सूर्य चमकता है, वैसे ही दोनों यानी चरणदासजी महाराज और परम गुरुभक्तिन सहजोबाई का यश-प्रकाश संसार में फैल गया। उनका ज्ञानसूर्य चमक उठा।

हमारे गुरु महाराज (प्रात:स्मरणीय परम पूज्य अनन्त श्रीविभूषित महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज) के साथ दुष्टों ने क्या कम अत्याचार किया है! आरम्भ में गुरु महाराज सिकलीगढ़ धरहरा में रहते थे। एक महिला को किसी ने सिखला दिया भूत खेलने के लिये। वह भूत खेलती थी। ओझा आता और उसको पूछता कि तुमको किसने भूत लगाया है, तो वह गुरु महाराज का नाम लेकर कहती कि उसी ने मुझको भूत लगाया है। उस गाँव में एक कबीरपंथी थे। उनका नाम था—श्री बाबू लाली साह जी। उस समय वे गुरु महाराज से दीक्षित तो नहीं थे; लेकिन गुरु महाराज के पास आते-जाते थे। गुरु महाराज के ज्ञान से वे सज्जन प्रभावित थे। उनको मालूम हुआ कि महर्षिजी पर यह महिला झूठ-मूठ आरोप लगा रही है। एक दिन वे जाते हैं उसके पास, जब वह भूत खेल रही थी और गुरु महाराज का नाम बतला रही थी। वे उस गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। उन्होंने उस महिला को डाँटकर कहा—"तुम्हारा सारा भूत हम निकाल देंगे खड़ाऊँ की मार मारते-मारते। हम जानते हैं कि वे कितने बड़े महात्मा है और कितनी ऊँची साधना करते हैं। क्या वे भूत लगानेवाले महात्मा हैं? अगर आज के बाद कभी भूत आया, तो खड़ाऊँ से तुम्हारा भूत उतरेगा। उस दिन से भूत भागा, तो भागा ही रह गया। (श्रोताओं की ओर से 'बोलिये श्री सद्गुरु महाराज की जय' का नारा।)

दूसरी घटना यह है कि एक बार गुरु महाराज को आदर के साथ सत्संगी सज्जनों ने एक गाँव में सत्संग कराने के लिये बुलाकर लाया। निश्चित समय पर गुरुदेव वहाँ पधारे। आम के बगीचे में फूस की एक चौबारी थी। उसी में उनको वासा दिया गया। गुरु महाराज उसमें ठहरे। सत्संग सुनने के लिए काफी लोग उपस्थित हुए। सत्संगीगण में अद्भुत प्रेम और उल्लास था। कार्यक्रम के अनुसार दिन का सत्संग हुआ। रात का भी सत्संग हुआ। खा-पीकर सब कोई सो गये; लेकिन जिसको परम पूज्य गुरुदेव से द्वेष था, उसने क्या किया? जब सब कोई सो गये, तो उसने उस घर में आग लगा दी, जिसमें गुरुदेव सोये हुए थे। घर से निकलने का जो रास्ता था, वहीं आग लगा दी, जिससे वे निकल न पायें लेकिन जो संसार को जगाने के लिए आये हैं, वे क्या सोयेंगे! उनको कौन जगायेगा? वे जगे हुए थे ही। उनके सेवक बरामदे पर सोये हुए थे। उनको उन्होंने जगाया। बिस्तर समेटकर बाहर निकल गये। भला जो जगत् के रक्षक हैं, उनका भक्षण कौन कर सकता है।

गुरुदेव की बढ़ती ख्याति और मान-सम्मान को देखकर राग-द्वेष में जलनेवाले उनके कुछ गुरु भाइयों ने उनकी निन्दा-शिकायत लिखकर पत्र द्वारा सत्संगियों में प्रचार किया। इससे भी जब संतोष नहीं हुआ, तो गुरुदेव के विरोध में उनकी विविध आलोचनाओं की पुस्तक तैयार कर भागलपुर के एक प्रेस में छपने के लिये दी गयी। प्रेस में आग

लग जाने के कारण वह पाण्डुलिपि उसी में जलकर भस्म हो गयी। पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी। इस तरह की बहुत-सी घटनाएँ हैं, कितना गिनाया जाय।

सृष्टिकर्ता ने सृष्टि-रचना में गुण-दोष और जड़-चेतन का मिश्रण किया है। यही हेतु है कि सृष्टि के आदिकाल से संसार में संत-असंत और शिष्ट-अशिष्ट–दोनों प्रकार के लोग होते चले आ रहे हैं। आज भी यह संसार संत-असंत से शून्य नहीं है, दोनों ही धन्य है; क्योंकि दोनों ही अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन में किञ्चित् भी कसर नहीं रखते। जैसे क्षीर और नीर-मिश्रित रूप से हंस क्षीर को ग्रहण कर नीर को छोड़ देता है, उसी प्रकार विवेकी जन सत्य को, सार को और सद्‌गुण को ग्रहण कर असत्य का, असार का और अवगुण का परित्याग करते हैं।

जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

सन्तों की पहचान बहुत कठिन है। अपनी जान पर खेलकर सन्तों ने इस ज्ञान का प्रचार किया। वह ज्ञान बाहरी ज्ञान नहीं है, आन्तरिक ज्ञान है। उसके साथ कोई बाहरी आडम्बर नहीं होता, आन्तरिक ज्ञान होता है वह ज्ञान, जिसको ब्रह्मज्ञान कहते हैं, आत्मज्ञान है, जिससे आत्मकल्याण होता है; प्रभु की प्राप्ति होती है; आवागमन का चक्र छूटता है।

"सन्त पंथ अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, स्रुति पुरान सद्ग्रन्थ॥"

सन्तों का जो रास्ता है, वह अपवर्ग का है अर्थात् अपवर्ग पर परमपद का है। अन्धकार, प्रकाश और शब्द के परे का है; अर्थ, धर्म, काम–इन तीनों के परे मोक्ष धर्म का है। उस धर्म पर चलने के लिये रास्ता बाहर संसार में नहीं है। वह रास्ता अपने अन्दर है। एक फकीर ने बड़ा ही अच्छा कहा है–

"बेहाशिये इन्सान से यह ख्याल जुदा है।
जाहिर में है मुहम्मद, वातिन में खुदा है॥"

अगर खुदा को हासिल करना चाहते हो, परमात्मा को पाना चाहते हो, तो वातिन में खुदा है यानी अन्दर में परम प्रभु है। अन्दर में उसकी प्राप्ति होगी। इसलिये–

"अद्भुत अन्तर की डगरिया, जा पर चलकर प्रभु मिलते॥
दाता सतगुरु धन्य धन्य जो, राह लखा देते।
चलत पंथ सुख होत महा है, जहाँ अझर झरते॥
अमृत ध्वनि की नौबत झहरत, बड़भागी सुनते।
सुनत लखत सुख लहत अद्भुती, 'मेँहीँ' प्रभु मिलते॥"

(महर्षि मेँहीँ-पदावली)

वह अंदर का डगर है। बाहर की डगरिया नहीं है, बाहर का रास्ता नहीं है। आंतरिक रास्ता है। अंतर-अंतर चलना है। जिज्ञासा होती है–अंतर-अंतर कैसे चलें? इसका भेद कौन बताएगा? तो उत्तर मिलता है–'दाता सतगुरु धन्य धन्य जो, राह लखा देते।' संत सद्‌गुरु के बिना और कोई इसको बता नहीं सकता। किताब पढ़कर थककर मर जायेंगे; लेकिन वह राह नहीं मिलेगी। स्वामी विवेकानंदजी ने कहा–'हम बहुत अध्ययन करते हैं। बहुत अध्ययन करने से हमारी बुद्धि का विकास होता है; लेकिन आत्म-विकास नहीं होता। एक पाण्डित्य का घमण्ड हमारे दिमाग में आ जाता है कि हमने इतना अध्ययन किया है, हम बहुत जानते हैं।' संतों का मार्ग आंतरिक मार्ग-सूक्ष्म मार्ग है, जागतिक स्थूल मार्ग नहीं है।

'चलत पंथ सुख होत महा है, जहाँ अझर झरते।'

उस रास्ते से चलने में कठिनाई नहीं, बल्कि सुख मिलता है। आप विचार की दृष्टि से देखिये। जब आप जाग्रत अवस्था में बहिर्मुख होते हैं और जब आप स्वप्नावस्था में अंतर्मुख होते हैं, दोनों की तुलना करके देखिये। जिस समय आप जगे हुए होते हैं, आपके मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार की चिन्ताएँ रहती हैं। उस दिन एक सज्जन कह रहे थे कि ऐसा कोई घर नहीं, जिस घर में कोई चिन्ता नहीं। मैंने उनसे कहा–ऐसा कोई सर नहीं, जिस सर में कोई चिन्ता नहीं। वस्तुतः किसी न-किसी प्रकार की चिन्ता हर सर में है। एक ही चिंता नहीं, अनेक

चिन्ताएँ हैं। लोग दुःखी हैं, पीड़ित हैं, आकुल हैं, व्याकुल हैं, छटपटा रहे हैं, चिंता के कारण नींद नहीं आ रही है, लड़की की शादी करनी है, लड़के को पढ़ाना है, व्यापार में घाटा है, अपने रुग्न हैं, पत्नी अनुकूल नहीं है, किसी को लड़का नहीं है, उसकी चिंता है। किसी को कई लड़के हैं, वे आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। किसी को अमुक के साथ मुकदमा लगा हुआ है, किसी को नौकरी नहीं मिल रही है, तो किसी की नौकरी छूट गयी है आदि। कितनी बातें दिमाग में है, जिसका ठिकाना नहीं। इन सब चिंताओं से हम तबतक ग्रसित रहते हैं, जबतक हम जगे हुए होते हैं। जैसे ही हम धीरे-धीरे जाग्रत से स्वप्न की ओर जाते हैं, उस समय क्या होता है? जाग्रत-स्वप्न के बीच में एक अवस्था होती है, जिसको तन्द्रा कहते हैं। उस तन्द्रा अवस्था में यह मालूम पड़ता है कि हमारी शक्तियाँ भीतर की ओर खिंच रही हैं। बाहर की चीजों को हम भूल रहे हैं। हमारी शक्तियाँ सिमट रही हैं। बल्कि हम अखबार लेकर पढ़ते रहते हैं, किताब लेकर पढ़ते रहते हैं, तो हाथ से अखबार छूट जाता है, किताब नीचे गिर जाती है। हम कहाँ चले गये, पता नहीं। हाथ में किताब थी, कैसे गिर गयी। हाथ तो है, अंगुलियाँ तो हैं ही, उनमें जो शक्ति थी, वह सिमटी है। बाहर से भीतर की ओर हो गयी। इसलिए हाथ कमजोर पड़ गया। बेचारी आँखें कुछ देख नहीं पातीं। स्वप्नावस्था में आँखें तो बंद रहती हैं; लेकिन दोनों कानें खुली ही रहती हैं। फिर भी कान कुछ काम करते नहीं हैं। हमारे नजदीक में ही बैठकर कोई हमारी या किसी को निन्दा अथवा प्रशंसा करते हैं, तो न तो हम निन्दा सुन सकते हैं और न प्रशंसा ही। हमारे निकट में ही कोई इत्र बेचनेवाला आ जाय या हमारा नन्हा-मुन्ना बच्चा पाखाना कर दे, उस समय हमको न तो दुर्गंधि लगती है और न सुगंधि ही। नासिका भी तो खुली ही रहती है, क्या हो गया? बहिर्मुख से अन्तर्मुख हो रहे हैं। देहाती भाषा में तन्द्रा को अधनिनियाँ कहते हैं। उस समय अगर कोई जगा देता है, तो बहुत दुःख होता है। हम सो रहे थे, नींद की ओर हम जा रहे थे, हमको जगा दिया, क्यों जगा दिया? आप भीतर की ओर जा रहे थे। दुःखों को भूलते जा रहे थे। आपके ऊपर दुःख का पहाड़ पड़ा हुआ हो; लेकिन जब आप नींद की ओर जा रहे होते हैं, तो वह पहाड़ हट जाता है। आप तन्द्रा से चले गये सुषुप्ति में यानी गहरी नींद में। वहाँ कोई दुःख नहीं। आपके शरीर में पीड़ा है, कष्ट है, रोग नहीं, पीड़ा नहीं, छटपटाहट नहीं, किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं। परमात्मा की ओर से यह प्रतिदिन की प्राकृतिक देन है। इस नमूने से जाना जाता है कि जो कोई भीतर की ओर जाते हैं यानी अन्तर्मुख होते हैं, वे दुःखों से छूटते हैं; लेकिन यह तो थोड़ी देर के लिये, मात्र कुछ घंटों के लिए होता है, जितनी देर हम गहरी नींद में रहते हैं। उसमें भी कुछ घंटे भी सभी लोगों को गहरी नींद नहीं आती है। बहुत कम समय लोग गहरी नींद में रह पाते हैं। नहीं तो स्वप्न में ही घूमते-घूमते सवेरा हो जाता है। अगर गहरी नींद में अधिक देर तक रहा जाय, तो बहुत प्रकार के रोगों का निवारण हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्तर्मुख जाने से सुख की ओर जाते हैं; लेकिन यह एक साधारण-सा नमूना है। जब हम स्वप्नावस्था में जाते हैं, तो आँख में नीचे की ओर उतरते हैं; लेकिन जो साधक हैं, साधना करते हैं, तो साधना में जो एकाग्रता होती है, उस एकाग्रता के कारण जो पूर्ण सिमटाव होता है, उस पूर्ण सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति में आवरण-भेदन होता है और वह अन्धकार से प्रकाश में चला जाता है। उसके सुख और आनन्द का क्या कहना! वहाँ उसको दिव्यानन्द की अनुभूति होती है। कल्पना कीजिये, रात का समय है। आप अँधेरे कमरे में बैठे हुए हैं। उस समय आप कैसा दुःख का अनुभव करते हैं! एकाएक बिजली आ गयी। तब आप कितना सुख का अनुभव करने लग जाते हैं। उसी तरह हम जन्म-जन्मान्तर से अँधेरी कोठरी

में बैठे हुए दुःखों का अनुभव कर रहे हैं। साधना के द्वारा जब अन्तःप्रकाश मिलता है, तो अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। वह प्रकाश अद्भुत है, आनन्द अद्भुत है; क्योंकि वह आन्तरिक डगर भी तो अद्भुत ही है। वहाँ उसको अद्भुत दृश्यों के दर्शन होते हैं। सतत आनन्द-ही-आनन्द है। क्षण-प्रतिक्षण आनन्द की वृद्धि होती रहती है। एक बंगाली महात्मा योगी श्रीपंचानन भट्टाचार्य ने कितना ही अच्छा कहा है–

"आनन्दे आनन्द बाढ़े प्रति क्षण।
दशेन्द्रिय थाके शून्य ते बन्धन।।
रिपुचय पराजय सकलि आनन्दमय।
अनुभव मात्र रय आर सब पाय लय।।
जे मन जीवने जीवन थाके ना।।"

सन्त कबीर साहब ने कहा है–

"भजन में होत आनन्द आनन्द।
बरसत विसद अमी के बादर, भींजत है कोइ सन्त।"

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज की वाणी में ही पाते हैं–

'चलत पंथ सुख होत महा है, जहाँ अझर झरते।'

वहाँ ज्योति झरती है। जहाँ महर्षि मेँहीँ जी की वाणी में हम 'अझर' शब्द का प्रयोग पाते हैं, वहाँ गुरु नानकदेव जी महाराज 'नीझर' शब्द का व्यवहार करते हैं–

"निझरु झरै सहज धुनि लागै, घर ही परचा पाईऔ।
अंजन माहिं निरंजनि रहीऔ, जोग जुगति इव पाईऔ।।"

नीझर = निर्झर = झरना। झरना झर रहा है, विविध प्रकार के प्रकाश हो रहे हैं अपने अन्दर में। विविध प्रकार के शब्द अपने अन्दर हो रहे हैं। जो उस ज्योति में स्नान करते हैं, डुबकी लगाते हैं, उसको अपने अन्दर का शब्द मिलता है। 'सहज धुनि लागै।' सहज ध्वनि यानी स्वाभाविक ध्वनि मिलती है। स्वाभाविक ध्वनि आदिनाद है। जिसको आदिनाद मिलता है, सारशब्द मिलता है, उसको प्रभु की पहचान हो जाती है। गुरु नानकदेवजी महाराज कहते हैं–'घर ही परचा पाईऔ' अर्थात् अपने घर में परम प्रभु का परिचय मिल जाता है। इसी से मिलती-जुलती बात सन्त कबीर साहब कहते हैं। उनका कहना है कि अनहद शब्द की झनकार होती है और अझर झरता है, तब ब्रह्मज्ञान होता है। ध्यान की अवस्था में सर्वव्यापी परमात्मा की प्रत्यक्षता भी अपने अन्दर होती है, कहीं बाहर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं।

"अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
आवगति अन्तरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान।।"

गुरु नानकदेव जी महाराज कहते हैं–'अंजन माहिं निरंजनि रहीऔ।' अंजन = माया। निरंजन = निर्माया। मायिक संसार में रहिये; लेकिन निर्मायिक होकर रहिये।

"अनासक्त जग में रहो भाई।
दमन करो इन्द्रिन दुखदाई।।"

(महर्षि मेँहीँ-पदावली)

संसार में अनासक्त होकर रहो, यह संसार में रहने की कला है। श्रीरामकृष्णदेव परमहंसजी महाराज ने कहा–"पानी में नाव रहे, कोई हानि नहीं; लेकिन नाव में पानी नहीं आना चाहिये। नहीं तो उसको वह डुबा देगा। उसी तरह भक्त संसार में रहे, कोई हानि की बात नहीं है; किन्तु भक्त में सांसारिकता नहीं आनी चाहिये, नहीं तो उसको वह डुबा देगी।" हमारे गुरुदेवजी कहते हैं–अपने अन्दर चलो। "अमृत ध्वनि की नौबत झहरत, बड़ भागी सुनते।" अपने अन्दर स्थूल-सूक्ष्मादि भेद से पाँच नौबत है। पाँचों के पाँच केन्द्र हैं, जहाँ से ध्वनि होती है। जो भाग्यवान् है, उसी को वह ध्वनि मिलती है–

"भाग्यहीन को ना मिले, भली वस्तु का भोग।
दाख पके मुख काग को, होत पाक को रोग।।"

जो भाग्यहीन है, उसको भली चीज का भोग नहीं मिलता है। हमारे गुरु महाराज कहा करते थे–"लोग दुःख को तो सह लेते हैं; परन्तु सुख बर्दाश्त नहीं कर सकते।" ऐंठ जाते हैं, उसमें अकड़ आ जाती है। उसके भाग्य में भली वस्तु का भोग

लिखा ही नहीं है, भोगेगा क्या? जिस समय अंगूर फलता है और वह पकने लग जाता है, उस समय कौए के मुँह में घाव हो जाता है। पका अंगूर वह खा नहीं सकता।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि भगवान् श्रीराम ने कहा था–"बड़े भाग मानुष तनु पावा।" वह बड़भागी है, जिसको मनुष्य-शरीर मिला है और भी विशेष बड़भागी हम तब होते हैं, जब हमको सत्संग मिल जाता है। "बड़े भाग पाइये सत्संगा।" उससे भी अधिक बड़भागी हम तब हो जाते हैं जब हमको सच्चे गुरु के दर्शन हो जाते हैं। उनसे सद् शिक्षा-दीक्षा मिल जाती है। और जब अन्तस्साधना करके परम प्रभु परमात्मा का अनुभव कर सन्त बन जाते हैं, तब तो भाग्य के लिये कहना ही क्या! संत पलटूदासजी महाराज ने कहा है–ऐसे महान पुरुष की जन्मदात्री माताजी भी धन्य हो जाती हैं–**'धनि जननी जिन जाया है, सुत सन्त सखी री।'**

वह कुल धन्य हो जाता है, जिस कुल में सन्त का अवतार होता है। गोस्वामीजी कहते हैं–भगवान् शंकर ने पार्वतीजी से कहा था–

'सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।'
(रामचरितमानस)

'अमृत ध्वनि की नौबत झहरत, बड़भागी सुनते।'

अमृत–जिसको प्राप्त करके अमरता मिलती है। वह क्या है? वह दो रूपों में है–(१) ज्योति-रूप में और (२) शब्दरूप में। जबतक हमारे शरीर में ज्योति और शब्द है, तबतक यह शरीर अमर है। इस शरीर से ज्योति और शब्द–दोनों निकल जायँ, तो यह शरीर मर जाएगा। जबतक शरीर में गर्मी है, तबतक यह शरीर जीवित है। जबतक हृदय में गति है, नाड़ी में गति है, तबतक यह जीवित है। किसी शरीर से जब गर्मी निकलती है, तो शरीर ठंडा पड़ने लग जाता है और नाड़ी की गति धीमी पड़ने लग जाती है। धीरे-धीरे श्वास की गति बन्द हो जाती है, तब क्या कहते हैं? मर गया, रामनाम सत्त हो गया। हमलोगों के शरीर में ज्योति और शब्द है। आन्तरिक ज्योति और आन्तरिक शब्द की साधना द्वारा ही परम प्रभु परमात्मा से मिला जाता है। ज्योति रूप-ब्रह्माण्ड तक रहती है। उसके आगे शब्द की गति होती है, जो अरूप-ब्रह्माण्ड कहलाता है; वहाँ केवल नाद-ही-नाद है, उस नाद के सहारे चलते हैं। जैसे नदी का जल समुद्र में जाकर मिल जाता है, वैसे ही नाद से नादों में चलते हुए अन्त में प्रणव ध्वनि मिलती है। प्रणव ध्वनि को ही ओऽम्, स्फोट, उद्गीथ आदि शब्दों से अभिहित करते हैं। उस शब्द-धार को पकड़कर सर्वाधार तक पहुँचा जाता है। प्रातःस्मरणीय परम पूज्य अनन्त श्रीविभूषित महर्षि मेँहीँ परमहंस जी महाराज की वाणी में हम पाते हैं–

नाद सों नादों में चलि धरु, प्रणव सतध्वनि सार रे।
एक ओऽम् सतनाम ध्वनि धरि,'मेँहीँ हो भव पार रे॥

इस तरह जो अन्तस्साधना करते हैं, अपने अन्तर चलते हैं। अन्धकार से प्रकाश में, प्रकाश से शब्द में और शब्द से निशब्दं परमं पदम्' में पहुँचकर प्रभु से मिल एक हो जाते हैं। जीवात्मा और परमात्मा–दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। जैसे नदी का जल समुद्र में मिल जाने पर उसकी संज्ञा समुद्र की हो जाती है, उसी तरह जो जीव जाकर परम प्रभु परमात्मा से मिल जाता है, उसकी संज्ञा भी परमात्मा हो जाती है, जीव की संज्ञा मिट जाती है। तब 'वह तुम्हीं तुम वही 'मेँहीँ', प्रश्न पुनि रहते नहीं' चरितार्थ हो जाता है। फिर वहाँ द्वैत भाव नहीं रहता है। जीव-पीव मिलकर एक हो जाते हैं। आवागमन का चक्र छूट जाता है। अंधकार से प्रकाश में, प्रकाश से शब्द में और शब्द से निःशब्द में। परम प्रभु परमात्मा के पास जाने का यही श्रेष्ठ रास्ता है और दूसरा, तीसरा, चौथा, अन्य कोई रास्ता नहीं है। यही अन्तर का रास्ता है। सरल रास्ता है, सहज रास्ता है, सुगम रास्ता है। जो कोई चलते हैं, प्रभु की ओर से उनको मदद भी मिलती है प्रभु-कृपा मिलती है। प्रभु की कृपा के सहारे कर प्रभु से मिलकर एकमेक हो जाते हैं। यह सहज साधना, सरल साधना सबको जानकर कहना चाहिये और अपने मानव-जीवन को कल्याण बनाना चाहिये। ❑

जो कुछ काम करें, उसके फल को सद्गुरु की मौज पर छोड़ देना चाहिए।–संत राधास्वामी

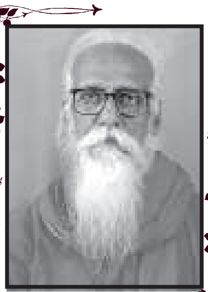

महर्षि हरिनन्दन परमहंस

गुरु-वचन

पूज्यपाद महर्षि हरिनन्दन परमहंस का यह प्रवचन पूर्णियाँ जिला के सिकलीगढ़ धरहरा में अ०भा० संतमत-सत्संग के ९८वें वार्षिक महाधिवेशन, दिनांक ०६.०३. २००९ ई० को प्रातःकालीन सत्संग में हुआ था। **प्रेषक**–डॉ० स्वामी गुरु प्रसाद

बन्दउँ गुरु पद-कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर।।

मंचासीन श्रद्धेय महात्मागण, धर्मानुरागी सज्जनवृंद, आदरणीया माताओ तथा भक्तिमती बहनो!

अभी हमलोगों ने वेदपाठ में सुना कि 'हे मनुष्यो! जगत्-प्रसवकर्त्ता ईश्वर का तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए पहले बुद्धियोग और मानस- योग तथा अग्नि की ज्योतियों का योग कर, योग की इस दृढ़ भूमि को अपने अन्दर अच्छी तरह धारण करें।' परमात्मा जगत् के प्रसवकर्त्ता हैं अर्थात् रचनाकार हैं। संसार में जितने भी प्राणी हैं, सबकी रचना परमात्मा ने ही की है। संसार में कितने तरह के जीव हैं? गो० तुलसीदासजी महाराज ने कहा है–

आकर चारि लच्छ चौरासी। योनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा।।
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

चार खानियाँ हैं–अण्डज, पिण्डज, उष्मज और स्थावर। जो अण्डे से उत्पन्न होता है, उसे अण्डज कहते हैं; जैसे–सर्प, पक्षी आदि। जो उदर से जन्म लेते हैं, उन्हें पिण्डज कहते हैं; जैसे–मनुष्य, पशु आदि।

गर्मी से या धूप के कारण निकलनेवाले पसीने से जो उत्पन्न होते हैं, उन्हें उष्मज कहते हैं; जैसे–ढील, लीख, चीलर आदि। धरती को फोड़कर उत्पन्न होनेवाले को स्थावर कहते हैं; जैसे–वृक्ष, लता, गुल्म आदि। इस तरह चौरासी लाख योनियाँ चार खानियों में विभक्त हैं और उनमें मनुष्य-शरीर सबसे श्रेष्ठ है। गो० तुलसीदासजी महाराज ने लिखा भी है–

नर तन सम नहिं कवनिउँ देही। जीव चराचर जाचत जेही।।

मनुष्य-शरीर के समान और कोई शरीर नहीं है। यही सबसे उत्तम शरीर है। इस शरीर में ऐसी क्या विशेषता है–

नरक सर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुख देनी।।

इसी शरीर में रहनेवाले स्वर्ग जाते हैं, मोक्ष प्राप्त करते हैं और जो इन दोनों को प्राप्त नहीं कर पाते, वे नरक में जाते हैं। इसी शरीर में रहकर ज्ञान प्राप्त होता है; भोगों के प्रति विराग उत्पन्न होता है और प्रभु-भक्ति की कामना होती है। कहा गया है कि भक्ति सुखदायिनी है। यह शरीर सर्वोत्तम है। इसे 'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा' भी कहा गया है। मोक्ष के साधन भी इसी शरीर में रहकर हो सकते हैं, अन्य शरीरों में नहीं। अन्य शरीरों को भोग-योनि कहा गया है। अर्थात् पूर्वजन्म में जैसा कर्म किया गया है, उसका भोग करने के लिए अन्यान्य शरीरों में जीव आया है।

भोग-योनि में आकर भी कई जीव सुख की दशा में रहते हैं–यह उनके पूर्वजन्म के किसी सुकृत्य का परिणाम है। श्रीशाही स्वामी बाबा एक बार अहमदाबाद गये थे। वहाँ एक महात्मा के आश्रम में उन्होंने एक भैंसा देखा, जिसकी मालिश चार सेवक कर रहे थे। ऐसी सेवा, ऐसा सुख सब भैंसों को तो नहीं मिलता। वह भैंसा निश्चय ही पूर्वजन्म के किसी सुकृत्य का फल भोग रहा है;

गुरु की कृपा से मनुष्य ऊँचा उठता है।–संत ज्ञानेश्वर

क्योंकि उसे आश्रम का वास और निजी सेवकों की सेवा का सुख प्राप्त हो रहा है; लेकिन पूर्वजन्म का संचित पुण्य धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा और इस जन्म में तो उससे कोई सुकर्म हो नहीं रहा है, (इस शरीर में रहकर वह ऐसा कुछ कर ही नहीं सकता) जो अगले जन्म के लिए संचित हो रहा हो। फिर क्या होगा? अगले जन्म में भैंसे को यह सुख कहाँ से प्राप्त होगा। आज हमलोग अपने घर में हैं, सुख से हैं, बढ़िया खा-पहन रहे हैं, फिर भी रोजी-रोजगार, खेती-बाड़ी करते हैं, क्यों? अपने भविष्य के लिए, कल के लिए।

आज खेती नहीं करेंगे, तो कल बढ़िया खाएँगे कैसे? आज का किया हुआ कर्म कल के काम आएगा; लेकिन भोग-योनियों में पड़े जीव कर्म नहीं कर सकते। वे पूर्वकृत कर्मों का भोग ही पा सकते हैं; क्योंकि वे कर्मयोनि में नहीं हैं। आप भोगयोनि के किसी भी जीव का उदाहरण ले लें। बैल को आप हल में जोत देते हैं, उससे काम करवाते हैं, उसे देते क्या हैं? केवल रूखा-सूखा घास-फूस। घोड़े को टमटम में जोतते हैं, कितने आदमी सवार हो जाते हैं उसपर? उसे मार खानी पड़ती है। टमटम को खींचकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना पड़ता है। सवारियों से मिलनेवाला पैसा भी उसे नहीं मिलता। खाने के लिए वही घास-फूस और चारा दे दिया जाता है।

घोड़ा अपनी शिकायत किसी से नहीं कर सकता, अपनी पीड़ा किसी के सामने व्यक्त नहीं कर सकता। वह कितना लाचार है, अवश है। दु:ख सहता है, फरियाद भी नहीं कर सकता। यह है भोगयोनि। जिस तरह का कर्म करके आया है, उसी का फल भोग रहा है; लेकिन यह मनुष्य-शरीर कैसा है? इसमें पूर्वजन्मों के कर्मों का भोग भी है और इस जन्म में अच्छे कर्म करने की आजादी भी है। यह कर्मयोनि है। यह मनुष्य-शरीर तुम्हें कैसे मिला? गुरु नानकदेवजी कहते हैं–

'नहिं ऐसो जनम बारंबार।
का जानौं कछु पुन्य प्रगट्यो, तेरो मानुषा अवतार।'

कहते हैं, तुम्हारे पूर्वजन्म के पुण्य ने ही यह मनुष्य-शरीर तुम्हें दिया है। यह बार-बार नहीं मिलता। जैसे-जैसे उम्र बढ़ रही है, वैसे-वैसे जीवन घट रहा है। इस जीवन की समाप्ति कब हो जाएगी, ठिकाना नहीं। संसार के रचनाकार परमात्मा ने कर्मानुसार हमें मनुष्य-शरीर प्रदान किया है। चौरासी लाख योनियों में जीव को कर्मानुसार भेजनेवाले वे ही हैं। जो जैसा कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे भिन्न-भिन्न योनियों में जाना पड़ता है।

अब हम विचार करें कि मृत्यु तो अवश्यंभावी है। यह शरीर छूटेगा ही। अगले जन्म में हमें कौन-सा शरीर प्राप्त होगा, क्या हम जानते हैं? यह शरीर छूटने पर दुबारा मनुष्य-शरीर ही प्राप्त होगा, इसका भरोसा किसे है? परीक्षा में बैठनेवाले छात्र को अपने अध्ययन–अपनी तैयारी से भरोसा होता है कि वह परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण होगा। ठीक उसी तरह से जो परमात्मा की भक्ति करते हैं और जीवन-काल में ही अपने को अंधकार से निकालने में समर्थ हो जाते हैं, उनको संशय नहीं रहता। गो० तुलसीदासजी महाराज ने कहा है–

जब लगि नहिं निज हदि प्रकास, अरु विषय आस मन माहीं।
तुलसिदास तब लगि जग जोनी, भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीं॥

जबतक अंत:प्रकाश की प्राप्ति नहीं होगी और विषयों की कामना मन में लगी रहेगी, तबतक तुम्हारे वश में यह नहीं है कि तुम मनुष्य-शरीर में ही जाओगे। संसार की विभिन्न योनियों में तुम्हें भटकना पड़ेगा, जहाँ सुख नहीं है।

अंधकार में पड़े हुए जीव को सुख कैसा? राधास्वामीजी ने कहा है–'इस नगरी में तिमिर समाना, भूल भरम हर बार।' जबतक संसार में हैं, भूलें होती रहेंगी, भ्रम बना रहेगा। जो इस अंधकार से जीवन-काल में ही अपने को निकाल लेते हैं, उन्हें भरोसा हो जाता है कि अन्य योनियों में जाना

नहीं पड़ेगा। इसीलिए हमारे आराध्यदेव ने कहा है–'इसके लिए एक ही उपाय है कि ध्यान-भजन खूब करो, नियम के साथ करो, मन लगाकर करो।'

सत्संग नित अरु ध्यान नित, रहिए करत संलग्न हो ।

सत्संग और ध्यान-भजन नियमित रूप से और पूरे मनोयोग से करो। मन को हमेशा ध्यान-भजन में संलग्न रखोगे, तो अंत समय में भी मन उधर ही लगा रहेगा। जैसे दिन-भर जिस ख्याल में रहते हो, रात में उसी का स्वप्न आता है। कोई छात्र है, पढ़ने-लिखने में उसका मन लगा है, तो वह स्वप्न में भी पढ़ता है।

किसान का मन खेती में लगा हुआ है, तो रात में वह स्वप्न में भी खेती-बाड़ी की बातें ही देखता है। व्यापारी का मन व्यवसाय में रमा रहता है, तो स्वप्न में भी वह लेन-देन की बातें देखता है। यह स्वाभाविक है।

कपड़े के एक व्यापारी की बात है। वह कम फायदा देकर भी कपड़ा बेच देता था; लेकिन ग्राहक को लौटने नहीं देता था। एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि कोई ग्राहक आया है और कपड़े का मोल-भाव कर रहा है। थोड़ी देर की जिरह के बाद व्यापारी बोला–'ठीक है भाई! तुम्हारी बात ही रही, कपड़ा फाड़ दूँ?' हठात् उसकी नींद टूटी, तो उसने देखा कि जो धोती उसने पहन रखी थी, उसे ही उसने नींद में फाड़ दिया था। तो जो जिस तरह का काम दिन-भर करता है, उसी में उसका मन लगा रहता है और उसी का स्वप्न देखता है।

सन्त कहते हैं कि जीवन-काल में अच्छी भावना रखोगे, तो अंत समय में मन में वैसा ही भाव रहेगा और अन्त समय में जैसी भावना मन में होगी, वैसी ही गति मिलेगी। कहा भी गया है–'अंत मति, सो गति।'

हमारे गुरु महाराज ने कहा था–'अगर ध्यान-भजन नियमित रूप से करते रहोगे, पवित्र जीवन बिताओगे, पापकर्मों से अपने को अलग रखते हुए नियमपूर्वक सत्संग करते रहोगे, तो इस जीवन में अंत:प्रकाश की प्राप्ति नहीं होने पर भी, अन्य योनियों में जाना नहीं पड़ेगा। तब ध्यान-भजन और सत्संग का यह संस्कार अगले जन्म में भी मनुष्य-शरीर में ही ले जाएगा, अन्य योनियों में जाने नहीं देगा। नित्य नियमित रूप से ध्यान-भजन-सत्संग नहीं करेंगे, तो संस्कार कैसे बनेगा? मन पर छाप किस चीज की होगी! तब भूलें हो सकती हैं, मन भ्रमित हो सकता है।

आपने राजा भरत की कथा सुनी ही है। उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपना राज्य पुत्र को सौंप दिया और स्वयं जंगल में तपस्या करने चले गये। जंगल में हिरण का एक बच्चा उन्हें मिला। वह छोटा, प्यारा-सा हिरण का बच्चा असहाय था। भरतजी ने उसे अपने आश्रम में ले आये और बड़े स्नेह से उसका पालन करने लगे। जल्दी ही हिरण का वह बच्चा उनसे हिल-मिल गया। भरत भी उसे प्यार करते, दुलराते। धीरे-धीरे उनका स्नेह उसी बच्चे पर केन्द्रित हो गया। वह बच्चा ही उनका संगी-साथी हो गया। पहले तो वे राजा थे, राजभवन में स्त्री-पुत्रादि में मग्न थे; लेकिन इस निर्जन एकांत जंगल में उनकी सारी ममता उसी बच्चे पर उतर आयी। उनके देहावसान का समय आया, तो उस अंतिम समय में उन्हें हिरण के बच्चे का ख्याल बना ही रहा, इसी से उनका अगला जन्म हिरण के रूप में हुआ।

अंतिम समय में जो ख्याल होता है, वही अगले जन्म का कारण होता है। उपनिषदों में भी आया है कि अंतकाल में मनुष्य के मन में जो-जो भावनाएँ उठती हैं, उन्हीं के अनुरूप उसका अगला जन्म होता है।

देहावसानसमये चित्ते यद्यद्विभावयेत् ।
तत्तदेव भवेज्जीव इत्येव जन्मकारणम् ।।
(योगशिखोपनिषद्)

भगवान बुद्ध के समय की एक कथा है।

बुद्ध के एक शिष्य थे। उन्हें किसी ने बहुत अच्छा वस्त्र दिया। उस वस्त्र को वे पहन भी न सके थे कि अचानक उनका शरीर छूट गया। शरीर-त्याग के समय उनका ख्याल उसी वस्त्र की ओर चला गया। वस्त्र की आसक्ति के कारण ही उनका अगला जन्म एक कीड़े के रूप में उसी वस्त्र में हुआ। भिक्षु की मृत्यु के समय दो अन्य शिष्य भी वहाँ उपस्थित थे। उन दोनों ने आपस में तय किया कि इस वस्त्र को हम दोनों आधा-आधा बाँटकर ले लेंगे। भगवान बुद्ध ने कहा–'अभी वस्त्र को छोड़ दो।' भगवान का आदेश दोनों ने मान लिया। एक सप्ताह बाद बुद्ध ने दोनों शिष्यों को बुलाकर कहा–'अब इस वस्त्र को दोनों बाँटकर ले लो।' दोनों शिष्यों के मन में संकोच हुआ, वे कुछ समझ न सके, तब उन्होंने पूछा–"भगवन्! उस दिन तो हम इस वस्त्र को बाँट रहे थे, तो आपने मना कर दिया था और आज स्वयं आप इसे बाँट लेने का आदेश दे रहे हैं। आखिर इसमें क्या रहस्य है, हमें समझाएँ।"

भगवान बुद्ध बोले–"वत्स! यह वस्त्र जिस भिक्षु को मिला था, वह इसे पहने बिना ही संसार से विदा हो गया; लेकिन अंत समय में उसका ख्याल इस वस्त्र की ओर चला गया। उस दिन तुम दोनों जब इसे लेने की बात कर रहे थे, तो वह बहुत व्याकुल हो उठा और 'मेरा वस्त्र! मेरा वस्त्र!!' कह उठा। तभी मैंने तुम दोनों को रोका था। वस्त्र में आसक्ति के कारण वह इसी वस्त्र में कीड़े के रूप में उत्पन्न हुआ और सात दिनों तक इसी वस्त्र में रहा। भोजन के अभाव में सात दिनों के बाद उसने कीड़े का शरीर त्याग दिया है और अब अपने पूर्वकृत ध्यान-भजन के संस्कार के कारण स्वर्गलोक को गया है। वहाँ स्वर्ग-सुख भोगकर वह पुनः जन्म लेगा और पूर्वसंस्कार से प्रेरित होकर फिर ध्यान-भजन में लग जाएगा।"

यह होता है ध्यान-भजन करने का संस्कार! संस्कार रहने पर भी अगर ख्याल को समेटकर नहीं रख सकेंगे, तो भूल हो सकती है और इसी के कारण कुछ काल के लिए अन्य योनियों में जाना पड़ सकता है; लेकिन जिनके पास ध्यान-भजन का कोई संस्कार नहीं है, जो कुछ भी पुण्य संचित नहीं कर सके हैं, उन्हें तो चौरासी लाख योनियों में भटकना ही पड़ेगा। अगर वे चाहेंगे कि मनुष्य-शरीर ही मिले, तो संभव नहीं है। परम भक्तिन सहजोबाई ने कहा है–

चौरासी भुगती घनी, बहुत सही जम मार।
भरमि फिरे तिहुँ लोक में, तऊ न मानी हार।।
तऊ न मानी हार, मुक्ति की चाह न कीनी।
हीरा देही पाय, मोल माटी के दीनी।।
मूरख नर समझै नहीं, समुझाया बहु बार।
चरणदास कहे सहजिया, सुमिरौ ना करतार।।

कहते हैं चौरासी लाख योनियों में बहुत बार घूम चुके, यम की बहुत मार खायी और यह हीरे-जैसा मनुष्य-शरीर पाकर भी इसका सदुपयोग नहीं किया तथा मुक्ति की चाहना न की। जैसे चूहा मुसकल में आ फँसता है, उससे निकलना नहीं जानता, वैसे ही हम भी इस शरीर में आ गये हैं और इससे निकलना नहीं जानते। कर्मानुसार देवदूत या यमदूत प्राण को शरीर के नौ द्वार से निकालेंगे। जितने समय के लिए इस शरीर में आये हैं, वह समय जब पूरा होगा, तब निकलना ही पड़ेगा। जो धर्मात्मा हैं, पुण्यात्मा हैं, वे आदरपूर्वक, सम्मान के साथ ले जाये जाते हैं; लेकिन जो पापी हैं, अधर्मी हैं, वे यमदूत की मार खाते हुए बलात् ले जाये जाते हैं। शरीर के नौ द्वारों से निकलने का मार्ग उत्तम मार्ग नहीं है, कष्टदायी मार्ग है।

संत लोग कहते हैं कि इस शरीररूपी पिंजरे से बिना कष्ट के निकलने का मार्ग भी है और वह मार्ग अपने अन्दर ही है। ध्यान-भजन से उस मार्ग की तलाश करो। उस मार्ग की तलाश दृष्टियोग से की जा सकेगी और उसकी युक्ति मिलेगी संत सद्गुरु से। अभी हम अपने शरीर को

देख रहे हैं; किन्तु शरीर में बसनेवाली आत्मा को नहीं देख पाते। आत्मदृष्टि से आत्मदर्शन होता है, हम अपने को पहचानने लगते हैं, तभी परमात्मा के दर्शन भी होते हैं। इसीलिए सहजोबाई ने कहा है—

'आपुन ही कूँ खोज, मिलै जब राम स्नेही ।'

पहले अपनी खोज करो, तब परमात्मा के दर्शन होंगे। अपने आपकी खोज कहाँ करेंगे? बाहर नहीं। अपने ही अंदर में हम हैं, यह सभी जानते हैं; लेकिन आवरण में हैं। हमारे शरीर के अन्दर तीन तरह के आवरण हैं—अंधकार, प्रकाश और शब्द; तीनों को पार करने पर परमात्मा का साक्षात्कार होता है। जबतक यह नहीं होता, आवागमन के चक्र में घूमने से बच नहीं सकते। बारंबार जन्म लेना और बारंबार मरना होता रहता है—इसमें कभी चैन नहीं मिलता। हमलोग रोज पाठ करते हैं—

'आवागमन सम दु:ख दूजा, है नहीं जग में कोई।'

अत: यदि सुख पाना चाहते हो, तो प्रभु-भक्ति करके उस रामराज्य में चलने का प्रयत्न करो, जहाँ पहुँचकर आवागमन का कष्ट न हो, बल्कि पूर्ण सुख और पूर्ण शान्ति हो; लेकिन एक ही शरीर में यह काम पूरा हो जाएगा, संभव नहीं है। इसीलिए प्रारंभ इसी शरीर से करो, तो बार-बार मनुष्य-शरीर मिलता रहेगा और भक्ति का संस्कार दृढ़ होता जाएगा। अगर प्रारम्भ भी नहीं करोगे, तो अर्जित पुण्य की पूँजी समाप्त हो जाएगी और फिर मनुष्य-शरीर से हाथ धोना पड़ेगा।

यह मनुष्य का शरीर ही इस बात का द्योतक है कि तुम्हारे पास पूँजी है; लेकिन जब पूँजी समाप्त हो जाएगी, तो भक्ति का कारोबार कैसे करोगे? कम-से-कम पूँजी तो बरकरार रखो। आगे भी मनुष्य-शरीर ही मिले, इसके लिए मानवोचित सद्गुणों को अपनाओ। यह मनुष्य-शरीर पाने का क्या मकसद है, क्या कार्य है, उस कार्य के संपादन में लग जाओ।

मनुष्य-शरीर पाने का जो परम फल है, वह यह है कि हम परमात्मा की भक्ति करें। अगर हम भक्ति कर रहे हैं, तो सच्चे अर्थों में हममें मानवता है, हम मानवोचित कार्य कर रहे हैं। अगर हम परमात्मा की भक्ति नहीं करते, सिर्फ आहार, निद्रा, भय और मैथुन—इतने में ही मग्न हैं, तो ऐसे मनुष्यों के लिए गो० तुलसीदासजी महाराज ने कहा है कि 'लाभ कहा मानुष तन पाये।' फिर मनुष्य-तन पाने का लाभ ही क्या हुआ!

यह सब जो तुम भोग रहे हो, इसे तो पिछले अनेक शरीरों में रहकर भोग ही चुके हो। श्रीराम ने अपने राज्य के लोगों को उपदेश दिया था और उसमें कहा था कि 'यह शरीर जो हमलोगों को प्राप्त हुआ है, विषयों के भोग के लिए नहीं है।' फिर भी संसार में हैं, तो सांसारिक विषयों को ग्रहण तो करना ही पड़ेगा; लेकिन उन्हें हम वैसे ही ग्रहण करें, जिस तरह बीमार पड़ने पर हम औषिध लेते हैं। स्वस्थ होने के लिए हम भरपेट औषधि नहीं लेते, रोग-मुक्ति के लिए नाममात्र की औषधि लेते हैं और जब रोग-मुक्त हो जाते हैं, तो औषधि त्याग देते हैं।

ठीक उसी तरह जब हम संसार में हैं, तो हमें भोगों को ग्रहण करना पड़ेगा, वस्त्र पहनना पड़ेगा, भोजन करना होगा, निद्रा लेनी होगी, घर में रहना होगा; लेकिन महज इसी के लिए यह शरीर प्राप्त नहीं हुआ है। सृष्टि के आदिकाल से अबतक न जाने कितने बार शरीर प्राप्त हुए और कैसे-कैसे भोगों को तुमने भोगा; लेकिन तुम्हें सुख-शांति नहीं मिली।

संत कबीर साहब ने कहा है कि 'जगत पीठ दै भाग री।' हम जगत् को पीठ देकर कैसे भागेंगे? हमारे गुरु महाराज ने यही युक्ति बतायी है। कहीं भागकर संसार से छूट सको, संभव नहीं है। सद्गुरु से युक्ति जानकर अपने अन्दर-अन्दर चलो। यही चलना तुम्हें एक दिन पूर्ण सुख के साम्राज्य में पहुँचा देगा। ❐

सद्गुरु से संबंध हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।—महाराज जनक

शाश्वत सत्य

–स्वामी रामतीर्थ

जिस सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रयास किया करता है, वह तो इन्द्रियों को केवल क्षणिक सुख देनेवाला झूठा सुख है। दुर्भाग्यवश मनुष्य ने उसी को असली और सच्चा सुख मान लिया है, जबकि असली और सच्चा सुख वह है, जिसमें स्थायी आनंद हो तथा जो शाश्वत हो। शाश्वत सत्य ही परम आनंद का द्योतक है। जिन लोगों ने इस परम आनंद का मजा चखा है, उनको अन्य सांसारिक सुख फीके और निःस्वाद लगने लगते हैं। जिन लोगों ने गंगोत्री का शुद्ध और शीतल जल पिया है, उसको कुँए का खारा जल कदापि अच्छा नहीं लग सकता। शाश्वत सुख का जिज्ञासु सांसारिक सुखों के पीछे नहीं भागता। इस प्रकार इन सुखों के पीछे भागने में कोई मजा नहीं है। यह तो नितांत अज्ञानता है, जो धोखा-ही-धोखा है।

आप पहले यह समझें और जानें कि संसार में वास्तविक रूप से अपना यह जीवन सफल बनाने के लिए कौन-सा पदार्थ मौलिक है तथा कौन-सा गौण है अर्थात् क्या आवश्यक है और क्या अनावश्यक। अनावश्यक कार्यों पर ध्यान देने से मनुष्य यथार्थ से दूर हो जाता है और झूठे दिखावे में फँसकर शाश्वत आनंद से वंचित हो जाता है। राम तो अपनी उचित आवश्यकताओं की ओर भी ध्यान नहीं देता; क्योंकि जो प्रारब्ध में है, वह तो मिलेगा ही; किन्तु बाहरी दिखावे या आडम्बरों की ओर तो ध्यान देने का प्रश्न ही नहीं उठता। इन्द्रियों की माँगों की भी राम कोई परवाह नहीं करता। मनुष्य को इन्द्रियों का गुलाम नहीं बनना चाहिए; क्योंकि वास्तव में वह तो इन्द्रियों का मालिक है। भगवान ने मनुष्य को इसीलिए विवेक बुद्धि दी है कि वह अपने मन की इच्छाओं का विश्लेषण करके यह जान सके कि उसके लिए क्या उचित है और क्या अनुचित।

संसार की स्थितियाँ बदलती रहती हैं; किन्तु उनके लिए मनुष्य को विवेक द्वारा अपने अंदर की शांति-स्थिति को नहीं बदलना चाहिए अर्थात् अपने अंदर की स्वाभाविक और मौलिक शान्ति का संतुलन भंग होने नहीं देना चाहिए। उसको तो एकरस और एक समान ही रहना चाहिए। दुःख और मुसीबतों से घबड़ाना कायरता है। सत्यनारायण के पुजारी को इन परिस्थितियों से डरना शोभा नहीं देता।

गर यों हुआ तो क्या हुआ, और वो हुआ तो क्या हुआ।

वैसे तो इन्द्रियों की माँगें सदा बढ़ती ही रहती हैं और मनुष्य के जीवनकाल में सब-की-सब पूरी भी नहीं हो सकतीं। इन्द्रियों की यह सब माँगें, मनुष्य के इच्छानुसार जब पूरी नहीं होतीं, तो उसको निराशा होती है और दुःख होता है। यदि कोई संसारी इच्छा पूरी हो भी गयी, तो इच्छाएँ और भी बढ़ती जाती हैं। इन बढ़ती हुई इच्छाओं को पूरा करने के चक्कर में मनुष्य दिन-रात चिंताओं में फँसा रहता है, जिसके कारण उसे कभी शांति नहीं मिल पाती, क्योंकि इच्छाएँ ही दुःख का कारण होती हैं। याद रहे कि बिना शान्ति के मनुष्य का जीवन एक बोझ-सा बन जाता है, केवल इच्छा-रहित मन ही शांत रह सकता है। जिसके दिल में शान्ति होती है, वही मनुष्य उन्नति करने में सफल होता है। इस प्रकार बिना सत्य को अपनाए मनुष्य संतुष्ट नहीं हो पाता, इसका मतलब या तात्पर्य यह नहीं कि शांत और संतुष्ट रहने के लिए मनुष्य कुछ न करें अथवा केवल हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा रहे। नहीं-नहीं, मनुष्य कार्य तो करे; परन्तु निष्काम और अनासक्त भाव से, दत्तचित्त होकर कार्य करे। कर्तव्य को अच्छी तरह करने में कोई कसर या कमी नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार से कर्तव्य-परायण होने पर जो भी सफलता प्राप्त हो, उसको ईश्वर का वरदान समझकर उसमें मनुष्य को संतुष्ट रहना चाहिए। केवल इसी संतोष में शांति, सुख और शाश्वत आनंद की झलक प्राप्त होती है। यह याद रहे कि शाश्वत सत्य का व्यावहारिक ज्ञान हुए बिना मनुष्य को शांति नहीं मिल सकती और न यथोचित संतोष प्राप्त हो सकता है, आनंद की बात तो दूर रही।

अरे प्यारे! आनंद तो मनुष्य के अंदर ही है; किन्तु दुर्भाग्यवश, अज्ञानता के कारण वह सुख और आनंद को संसार की बाहरी वस्तुओं में ढूंढता रहता है, भला उसमें आनंद कहाँ है? ❖

गुरु सर्वदेवमय होता है।–श्रीमद्भागवत पुराण

संत वचन शीतल सुधा करत तापत्रय नाश

सुरति रहै अलगान

ध्यान के समय जो अपनी दृष्टि को कछुई की दृष्टि के समान बनाता है, वही सच्चा ध्यानी है। (टकटकी लगाकर देखना 'कछुई की दृष्टि' है। यहाँ संकेत किया गया है कि विन्दु-ध्यान टकटकी बाँध कर करना चाहिए। 'दृष्टि कमठ का ध्यान, गगन में लावना।' 'दृष्टि कच्छप केरी ध्यान जो लाइये, अंडा सुरति से सेइ आवै।'–संत पलटू साहब।) कछुई किनारे की सूखी जमीन पर अंडा देती है और आप जलाशय में रहकर अंडे को सुरत–ख्याल से सेती रहती है। जिस तरह पनिहारिन जल से भरा घड़ा सिर पर रखकर मार्ग में आती है; वह घड़े पर से हाथ हटा लेती है और मुख से सहेलियों से बातें भी करती हैं; परंतु अपना चित्त सदा घड़े में लगाये रखती है। मणिधर साँप अपनी मणि बाहर उतार रखता है और आप उसके प्रकाश में आहार की खोज में जाता है; परंतु वह कभी असावधान नहीं रहता; अपनी सुरत को सतत मणि में लगाये रखता है। उसी तरह साधक संसार के सब कार्य करे; परंतु अपनी सुरत को उनसे अलग (अनासक्त) रखकर परमात्मा की ओर लगाये रखे। **–संत पलटू साहब**

गोता मारि देखो आदम

दोनों आँखों को मूँदकर अंदर देखा, तो पाया कि वहाँ बाहरी चंद्र-सूर्य और दिन-रात नहीं है। वहाँ बिना दीपक, तेल और बत्ती के प्रकाश होता है। उसी प्रकाश से सभी प्रकाशित हैं। हे मनुष्यो ! खूब सोच-विचारकर देखो, तो पाओगे कि तुम्हारे साथ जानेवाला तुम्हारा और कोई साथी नहीं है। मैंने इस बात की ठीक-ठीक खोज की है अथवा यह बात निश्चित रूप से जान लो कि तुम यमदूत के साथ जानेवाले हो अर्थात् तुम मौत के शिकार होनेवाले हो। **–संत यारी साहब**

सुखकंद अनहद नाद सुनि

अंदर में ध्वन्यात्मक नाम की नौबत बज रही है। उस गुप्त आवाज को सावधान और एकाग्र होकर सुनो। सुख की जड़ उस अनाहत नाद को सुनने पर दुःख, पाप, कर्मबंधन और मिथ्या ज्ञान–सब दूर हो जाते हैं। इस नाद के सहारे सतलोक को हाथ से स्पर्श कर लो अर्थात् सतलोक पहुँच जाओ; अथवा यह नादरूपी जलधारा सतलोक के केन्द्र से बरसती है। निर्वाण दिलानेवाला यही नाद मन को विषय की ओर जाने से रोकता है अर्थात् इसी नाद से मन वशीभूत होता है। तुम सचेत हो जाओ और चित्त से प्रेम-मग्न होकर आनंदमयी आरती सजाओ। परमात्म-पद आया हुआ जानकर मैं सनाथ हो गया; मेरा खोया हुआ परमात्म-पदरूपी राज्य पुनः मुझे मिल गया। अत्यन्त शोभा पानेवाले हे भक्तशिरोमणि सद्गुरु संत जगजीवन साहब ! आपकी कृपा से आपके इस दास का कार्य पूर्ण–सफल हो गया और वह धन्यभाग्य हो गया।

–संत दूलन दासजी

गहगह अनहद बजै निसान

शरीर के अंदर ब्रह्मांड में अंतर्नाद की डोरी परमात्मा तक लगी हुई है। ऐ मेरे मन ! सुरत की संलग्नता से उस डोरी पर चढ़ो। (सुरत की अंतर्मुखता या सिमटाव होने पर मन का भी सिमटाव हो जाता है। सुरत और मन मिले-जुले हैं।) त्रिकुटी (दशम द्वार) में ध्यान करने पर झलमलाता हुआ प्रकाश दिखाई पड़ता है। अंदर का सूक्ष्म आकाश प्रकाशित होते हुए ध्वनित हो रहा है। अनाहत नादरूपी नगाड़े की मीठी ध्वनि हृदय को अत्यन्त आनंदित करनेवाली है। जहाँ से अनाहत नाद आता है, वहाँ (सतलोक में) प्राण पुरुष (चेतन-आत्मा) का निवास जानो। आनंदित हो-होकर और प्रकाश-मंडल को छोड़-छोड़कर

निःशब्द की ओर ले जानेवाले शब्द के मार्ग पर चलो। निःशब्द परम पद में अकेला ही–बिना किसी आधार के ही बड़ी महिमावाला परमात्मा स्थित है। वही सबके माता-पिता है अर्थात् वही सबका उत्पन्न, भरण-पोषण और रक्षण करनेवाला है। **–संत बुल्ला साहब**

इंगला पिंगला सुखमन सोधो

यदि तुम अंतर्मुख होकर शरीर के अंदर देखोगे, तो वहाँ तुम्हें प्रकाश का बहुत बड़ा फैलाव (क्षेत्र) दिखाई पड़ेगा। वहाँ बिना बाजाओं के सब तरह की (सब राग-रागिनियों की) ध्वनियाँ हो रही हैं; वहाँ कमल और कचनार भी खिलते हैं अर्थात् वहाँ खिले हुए कमल और कचनार की तरह के ज्योति-रूप भी दिखाई पड़ते हैं। अंदर के आकाश में प्रवेश करके इड़ा-पिंगला नाड़ियों को मिलाओ और दशम द्वार में साधना करो। (इड़ा-पिंगला नाड़ियों को मिलाकर दशम द्वार में स्थित करो।) इड़ा और पिंगला नाड़ियों के बीच दशम द्वार में ज्योति और शब्द-रूप सच्चा अमृत भरता है या भरा हुआ है। इड़ा और पिंगला नाड़ियों को सुषुम्न-विन्दु में लाकर शुद्ध (सम या एक) करो। स्थूल मंडल के शिखर (सुषुम्न-विंदु) की ओर से ज्योति और शब्दरूप अमृत की धाराएँ बह रही हैं। सुरत की संलग्नता के द्वारा यदि सुषुम्न-विन्दु पर स्थिर होओ, तो वहाँ स्वाभाविक रूप से उठती हुई अनहद ध्वनियों को सुनोगे। उस मूलचक्र (आज्ञाचक्र) में प्रतिष्ठित होकर अंतर्नाद की डोरी में अपनी सुरत को संलग्न करो, जहाँ माणिक्य बलता है। इस तरह श्रेष्ठ सद्गुरु (परमात्मा) को प्राप्त करो, जो परम मोक्ष के स्थान–शब्दातीत पद में अवस्थित हैं। **–संत गुलाल साहब**

चित्त एक ठौर आनि

जब हृदय में आत्मतत्त्व को जानने (पहचानने) की इच्छा जगे, तब चित्त को एक स्थान पर लाकर अर्थात् चित्त को एकाग्र करके सद्गुरु-द्वारा कही गयी आत्मतत्त्व-संबंधी बातों को वैसी ही तन्मयता से सुनना चाहिए, जिस तन्मयता से हिरन व्याधे की मुरली-ध्वनि का श्रवण करता है। श्रवण का सच्चा स्वरूप ऐसा ही होना चाहिए। जैसे चातक (पपीहा) पक्षी स्वातिनक्षत्र के बादल की बूँद के लिए ही बारंबार रट लगाता रहता है, इसी तरह साधक निरंतर मनन करता रहे (सदा व्याकुल रहे) कि कब उसे परमात्मारूपी बूँद की प्राप्ति होगी। रात में चकोर पक्षी जैसे एकटक चंद्रमा का सतत ध्यान करता रहता है–चंद्रमा की ओर से अपनी दृष्टि को कभी विचलित नहीं करता, निदिध्यासन का ऐसा ही स्वरूप जानकर ध्यान में इसी तरह ध्येय तत्त्व को दृढ़ता से ग्रहण कीजिए। जैसे बर्फ जल में पिघलकर जल ही हो जाती है, उसी तरह जब जीव ब्रह्म में मिलकर ब्रह्म ही हो जाए, तब ऐसी ही स्थिति को आत्मानुभव या आत्मसाक्षात्कार की स्थिति कहना चाहिए। **–संत सुन्दर दासजी**

सार शब्द कपाल भीतर

हे मेरे मन ! तुम अंदर की ओर लगे रहो।। मस्तक के अंदर सारशब्द के सहित विविध प्रकार की अनहद ध्वनियाँ हो रही हैं। सद्गुरु के मुख से अंतर-साधना-संबंधी बातों को सुन-समझकर आनंदित हो भीतर की ओर देखते रहो, एक पल के लिए भी गफलत में मत पड़ो। जब इड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी मिलकर सुषुम्न-विन्दु में केन्द्रित हो जाती हैं, तब बहिर्दृष्टि छूटकर अंतर्दृष्टि हो जाती है। इस अंतर्दृष्टि से भीतर की ओर देखो, वहाँ अनेक रंगों के प्रकाश हो रहे हैं अथवा वहाँ अत्यधिक तीव्र प्रकाश हो रहा है। कैवल्य मंडलरूपी शून्य आसन पर स्वयं परमात्मा परमालौकिक आनंद में मग्न हुए अवस्थित हैं। दोनों आँखों की दोनों दृष्टिधाराओं से एक कोर (नोक, सिरा) बनाकर भीतर में देखते रहो।

– संत शिवनारायण स्वामी

जो परम कल्याण का जिज्ञासु हो, उसे गुरुदेव की शरण लेनी चाहिए।–श्रीमद्भगवद्गीता

सम्पादकीय

दु:ख का कारण

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
(रामचरितमानस, उत्तरकांड, १२१ (क) १९)

सब दु:खों की जड़ मोह (अज्ञान) ही है। इस अज्ञान जैसी व्याधि के द्वारा ही और कई प्रकार के शूल उत्पन्न होते हैं।

मनुष्य दु:खी क्यों होता है? मनुष्य को दु:ख देनेवाला उसका अपना 'संकल्प' ही है, जो वह जाने-अनजाने करता रहता है, ऐसा होना चाहिए और ऐसा नहीं होना चाहिए। यह जो मन की धारणा है, इसी से दु:ख होता है। अगर मनुष्य यह संकल्प छोड़ दे, तो साम्यावस्था प्राप्त कर सकता है। इसी बात को भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को समझाते हुए कहा है–

सर्व संकल्प संन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥
(गीता, ६।४)

हम अपना ही संकल्प करके मुफ्त में स्वयं ही दु:ख पा रहे हैं। जो संकल्प पूरे होनेवाले हैं, वह तो पूरे होंगे ही और जो पूरे नहीं होनेवाले हैं, वे पूरे नहीं होंगे, तो फिर संकल्प करें ही क्यों, व्यर्थ में दु:खी क्यों हों? सभी संकल्प किसी के भी पूरे नहीं होते, जैसा हम चाहें, वैसा ही होगा, यह बात नहीं है। होगा तो वही, जो होना है–

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा॥
(रामचरितमानस, बालकांड, ५२।७)

इसलिए अपना संकल्प रखना दु:खों को और पराधीनता को निमंत्रण देना है। होनेवाला संकल्प तो पूरा हो ही जायेगा, फिर चिंता क्यों? जैसा तुम चाहो, वैसा ही हो, यह अपने हाथ की बात नहीं है। यदि मनुष्य संकल्पों का त्याग कर दे, तो तत्त्व की प्राप्ति हो जाये अर्थात् भक्त हो जाये, जीवन-मुक्त हो जाये। मनुष्य जन्म ही सफल हो जाये।

एक बहुत सुंदर बात यदि अपना संकल्प भगवान पर छोड़ दोगे, तो भक्ति मिलेगी; प्रारब्ध पर छोड़ दोगे, तो निश्चिन्तता आएगी और यदि प्रकृति पर छोड़ दोगे, तो स्वतंत्रता मिल जायेगी। निर्णय तुम्हारे हाथ है, जो तुम्हें अच्छा लगे, उसी पर छोड़ दो, बस दु:ख मिट जायेंगे। संकल्प रखोगे, तो बंधन होगा ही। होगा तो वही, जो भगवान करेंगे या जो प्रारब्ध में है अथवा जो संसार में होनेवाला है। मनुष्य का अधिकार केवल कर्तव्य कर्म करने में ही है, फलों में कभी नहीं–

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'
(गीता, २।४७)

हम ऐसा करेंगे और ऐसा नहीं करेंगे, शास्त्र-विरुद्ध कोई काम नहीं करेंगे, इसमें तो स्वतंत्रता है, पर दु:खदायी परिस्थिति नहीं आये, इसमें स्वतंत्रता नहीं है। दु:खदायी और सुखदायी परिस्थितियाँ आयेंगी ही, आप चाहो तो भी आयेंगी और न चाहो तो भी आयेंगी। हमें तो अपने कर्मों में सावधान रहना है अर्थात् शास्त्र की और संत-महात्माओं की आज्ञा के अनुसार काम करना है, अपने संकल्प से नहीं। जब अपना कोई संकल्प ही नहीं होगा, तो मनुष्य हर प्रकार से सुखी रहेगा। ऐसा हो जाये, तो भी ठीक और वैसा हो जाये, तो भी ठीक; क्योंकि मन में कोई संकल्प नहीं। रज्जब साहब की वाणी है–

रज्जब रोष न कीजिये, कोई कहे क्यों ही।
हँसकर उत्तर दीजिये, हाँ बाबा जी यों ही॥

तुम अपना संकल्प चाहे संसार के संकल्प में मिला दो, चाहे प्रभु के संकल्प में मिला दो और चाहे प्रारब्ध में मिला दो, होगा तो वही जो होना है, फिर कूदा-कूदी क्यों करते हो? छोड़ो अपने सभी संकल्पों को और कर लो जीवन पवित्र। सभी संकल्प छोड़ने का अर्थ है–'समर्पण।' समर्पण बड़ी कठिन चीज है, बिरले ही अपना आपा सुपुर्द कर अपने को गुरु के ऊपर निर्भर कर पाते हैं। ऐसों के लिए अति दुस्तर मार्ग भी सरल हो जाता है और वह बिना परिश्रम सहज ही में पार लग जाते हैं,

गुरु की कृपा से मनुष्य संपूर्ण कामनाओं को पा जाता है।–महाभारत

उनकी सारी जिम्मेदारी गुरु पर आ जाती है और गुरु को उनका उद्धार करना ही पड़ता है। यदि हमारा कोई संकल्प नहीं हो, तो जो अपने आप होता है, उसमें अपवित्रता नहीं आती। चाहे संसार के संकल्प से हो, भगवान के संकल्प से हो अथवा फिर चाहे प्रारब्ध से हो, सभी ठीक होगा।

दो बातें हैं—एक स्फुरणा होती है और एक होता है संकल्प। जैसे हमें कई बात याद आ गयी, यह हो गयी स्फुरणा और ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए, यह हो गया संकल्प। स्फुरणा होती रहती है और मिटती रहती है। बस जहाँ स्फुरणा को पकड़ लोगे, वही संकल्प हो जाएगा। संकल्प में मनुष्य बंध जाता है—'फले सक्तो निबध्यते।' (गीता, ५।१२) और फिर संकल्प से कामना पैदा होती है—'संकल्प प्रभवान्कामान्।' (गीता, ६।२४) बस यह कामना ही संपूर्ण पापों और दुःखों की जड़ है। संकल्पों का त्याग करते ही मनुष्य योगारूढ़ हो जाता है, यह कितनी सीधी और सरल बात है। जो अनुकूल या प्रतिकूल होनेवाला है, वह तो होगा ही। आप सुखी-दुःखी होते रहें, यह आपकी मर्जी। इसी प्रकार अपने-अपने प्रारब्ध का फल भी अवश्य आयेगा ही, आपकी स्थिति या परिस्थिति चाहे कुछ भी हो। अतः चतुर वही है, जो अपना कोई संकल्प नहीं रखता। जब कोई संकल्प नहीं, तो फिर दुःख कैसा?

अपनी अनुकूलता में राजी और प्रतिकूलता में नाराज होना—ये दोनों ही व्यथा हैं। ये इन्द्रियों के विषय ही अनुकूलता और प्रतिकूलता में सुख-दुःख देनेवाले हैं। यदि इनको सह जाओ और सुख-दुःख में सम हो जाओ, तो ऐसे धीर-वीर मनुष्य को वे व्यथा नहीं पहुँचाते, वह तो मुक्ति का पात्र हो जाता है, उसका कल्याण हो जाता। (गीता, २।१४-१५ का भावार्थ) गुणों का संग और वृत्तियों के साथ आसक्ति, यही ऊँच-नीच योनियों में जन्म लेने का कारण है—'कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।' (गीता, १३।२१)

वास्तव में संकल्प तो है ही मिटनेवाला। यदि सह गये, तो जीवन-मुक्त हो जाओगे, परमात्म-प्राप्ति की सामर्थ्यता आ जायेगी, महान शक्ति, महान आनंद अपने आप आयेगा। अपने उद्योग से किया हुआ ठहरता नहीं और अपने आप आया हुआ जाता नहीं। बस बात इतनी-सी है कि अपना कोई संकल्प न रखें, यही वास्तविक त्याग है। संसार की वस्तुओं का त्याग असली त्याग नहीं। वस्तुओं के छूटने से मुक्ति नहीं होती, मुक्ति होती है मन के संकल्प छोड़ने से।

जैसा ऊपर निवेदन किया गया है, स्फुरणा तो आती-जाती रहती है; जैसे वायु आयी और चली गयी, गर्मी आयी और चली गयी, ऐसे ही स्फुरणा आयी और चली गयी। यदि पकड़ोगे, तो संकल्प हो जायेगा, फिर संकल्प से कामना पैदा होगी। (स्फुरणा से कामना पैदा नहीं होती) तात्पर्य यह कि किसी चीज का दीखना स्फुरणा और उससे चिपक जाना संकल्प हो जाता है। संकल्प करने पर आवश्यकता पूरी होगी, तो अभिमान आ जायेगा और बिना संकल्प किये आवश्यकता पूरी होगी, तो अभिमान नहीं आयेगा।

शुभ कार्य करने का संकल्प हो जाये, तो उसको जल्दी शुरू कर देना चाहिए—'शुभस्य शीघ्रम्।' फिर करेंगे, ऐसा नहीं होना चाहिए। समय का कोई भरोसा नहीं है। काल सबको खा जाता है। विचार चाहे अच्छा हो या बुरा हो, काल किसी को नहीं छोड़ता। किसी भी सुंदर व पवित्र काम में देरी करने से वैसा भभका फिर नहीं रहता, कमजोर होकर मिट जाता है। अपना संकल्प छोड़ देने का विशेष लाभ यह होगा कि अशांति रहेगी ही नहीं, न कोई संकल्प, न अशांति—केवल शुद्ध शांति ही रहेगी। इस कार्य के लिए हमारा प्रयास ही यथेष्ट नहीं है, भगवान की कृपा ही सर्वोपरि है। प्रभु का ध्यान-भजन ही सुख देनेवाला और उद्धारक का है।

हिम ते अनल प्रकट बरु होई।
बिमुख राम सुख पाव न कोई।।
बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, यह सिद्धांत अपेल।।

(रामचरितमानस, उत्तरकांड १२२ (क) १९)

❑❑❑

गुरु के ज्ञानरूप प्रकाश की ज्योति के बिना आत्म-साक्षात् असंभव है।—अमरमुनि